प्रवचन।

बँगला-साहित्य में कविवर माइकेल मधुसूदनदत्त का स्थान कितना उच्च है वह इसी से समझा जा सकता है कि उन्होंने अपनी सुन्दर रचना-द्वारा बँगला भाषा में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। उन्होंने बँगला कविता और नाटकों को वह रूप दिया था जिसका अनुकरण कर आज बँगला अपनी इस वर्तमान दशा को प्राप्त हुई है। आप बँगला के उन सर्वप्रथम कवियों में हैं जिन्होंने पहिले पहल अतुकान्त कविता और वियोगात्मक नाटक लिखे। सर्वप्रथम अतुकान्त कविताकारक होते हुए भी आपकी कविता बहुत उच्च कोटि की है, बँगला-साहित्य में उसका स्थान बहुत उच्च है। यहाँ पर मैं मधुसूदन रचित मेघनादवध के विषय में बँगला के सुप्रसिद्ध कवि एवं लेखक बाबू हेमचन्द्र बन्दोपाध्याय की सम्मति उद्धृत करता हूँ इससे मालूम होगा कि बँगला-साहित्य में माइकेल का क्या स्थान है:—

"इस ग्रन्थ में ग्रन्थकर्ता ने अपना जो असाधरण परिचय दिया है। उसे देख कर विस्मयापन्न और चमत्कृत होना पड़ता है। सच [विवेचना करके देखने पर बँगला भाषा में इसके समान दूसरा काव्य नहीं दिखलायी पड़ता। कृत्तिवास और काशीरामदास लिखित रामायण और महाभारत के अनुवाद को छोड़कर इतने रसों का समावेश और किसी बंगला-पुस्तक में नहीं है। इसके पूर्व जितनी पुस्तकें लिखी गयी हैं वे करुण या आदिरस (शृङ्गाररस) से परिपूर्ण हैं, उनमें वीर या रौद्ररस

पाना बहुत कठिन है; किन्तु जिन्होंने एकाग्रचित्त से मेघनाद की शंखध्वनि सुनी है, उन्होंने ही समझा है कि बँगला भाषा में कितनी शक्ति है और माइकेल मधुसूदनदत्त कैसे विचित्र शक्ति सम्पन्न कवि हैं।"

यद्यपि माइकेल ने इतना बड़ा कार्य किया परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्होंने बँगला-साहित्य का अध्ययन कभी नहीं किया था; क्रिश्चियन हो जाने के कारण बँगला से उनका बहुत कम सम्बन्ध रहता था। लेकिन उनकी प्रतिभा शक्ति बड़ी विलक्षण थी, वे प्रकृत कवि थे आज कल के बरसाती कवियों की तरह नहीं थे। जिसकी विलक्षण मेधा शक्ति में भारत की बारह और यूरोप की बारह भाषाएँ सीख कर अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन और इटालियन भाषाओं में कविता करने की शक्ति थी, उसके लिये अपनी मातृभाषा में कविता कर लेना कोई बड़ी बात नहीं थी। उन्हें आरम्भ से ही अपनी प्रतिभा पर पूर्ण विश्वास था, उनकी इच्छा थी कि मैं अपने समय का सबसे बड़ा कवि होऊँ; मेघनादवध लिखते समय उन्होंने सदर्प कहा भी था:—

"गाँथिवो नूतन-माला
रचिबो मधुचक्र गौड़जन जाहे
आनन्दे कोरिबे पान सुधा निरवधि।"

नया हार गूँथ कर मैं ऐसा सुखमय मधुचक्र (शहद का छत्ता) बनाता हूँ जिसका अमृत-पान बङ्गवासी सदा आनन्द-पूर्वक करेंगे।

इतने बड़े विद्वान् और अद्भुत प्रतिभाशाली कवि होकर भी मधुसूदन का जीवन- आदर्श नहीं था। वे कवि थे, कवि हृदय स्वतन्त्र होता है, उसे कोई बन्धन अच्छा नहीं लगता। परन्तु

मधुसूदन आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता पा—स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर—उच्छृङ्खल हो गये थे, इसी कारण उनको अपने जीवन में भयंकर कष्ट भोगने पड़े थे। भयंकर कष्ट में रह कर वे किस प्रकार कविता लिखते थे इसका वर्णन सचमुच बड़ा ही रोमांचकारी है। निरन्तर कष्ट में रहते हुए कोई बड़ा कार्य करना यह भी कम कोई विलक्षण बात नहीं है। मधुसूदन का जीवन ही विलक्षण बातों से भरा हुआ है। यदि मधुसूदन की जीवनी विलक्षण बातों की पिटारी कही जाय तो अनुचित न होगा!

आदर्श-जीवन न होने के कारण मधुसूदन की जीवनी से शिक्षा और सीखने योग्य बातें नहीं मिलतीं, ऐसी बात नहीं है। उनकी जीवनी से अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं। इस पुस्तक में कवि की जीवनी के साथ साथ उनके ग्रन्थों की भी संक्षिप्त आलोचना की गयी है और कविता का भी कुछ उदाहरण दिया गया है; पाठकों की सुविधा के लिये प्रत्येक बँगला कविता का हिन्दी पद्यानुवाद भी दे दिया गया है। इन कविताओं के लिये हम अपने सहृदय बन्धु श्रीयुत विश्वनाथप्रसाद मिश्र "मुकुन्द" को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते (यद्यपि धन्यवाद देना उचित नहीं था?) जिन्होंने हमारे अनुरोध से अपने अप्रकाशित ग्रन्थों में से आवश्यक अंश देने की कृपा की है। इसके अतिरिक्त हमने श्रीयुत "मधुप-जी" द्वारा अनुवादित 'विरहणी व्रजाङ्गना' से भी एक कविता उद्धृत की है सुतरां इसके लिये हम उनके भी अनुगृहीत हैं।

बजरंगबली गुप्त।

प्रकाशक के दो शब्द ।

किसी जाति के उत्थानार्थ उसकी भाषा में संसार के सुप्रसिद्ध महात्माओं की जीवनी का होना कितना आवश्यक है इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं । जिस प्रकार आदर्श पुरुषों की जीवनियों का 'पठन-पाठन' किसी जाति को सन्मार्ग दिखलाने—उसे उन्नत बनाने का सबसे अच्छा साधन है; उसी प्रकार किसी साहित्य की उन्नति के लिये अन्य विषयों की पुस्तकों के साथ साथ संसार के सुप्रसिद्ध कवियों एवं लेखकों पर ऐसी पुस्तकों के होने की अत्यंत आवश्यकता है जिनमें कवियों और लेखकों की जीवनियों के साथ उनके ग्रन्थों की भी आलोचना हो। बँगला, अँगरेजी आदि उन्नत भाषाओं में तुलसी, कबीर, कालिदास, शेक्सपीयर आदि कवियों के विषय में बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं । हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की कमी हम लोगों के चित्त में बहुत दिनों से खटक रही थी। इसीलिये हम लोगों ने बँगला के सुप्रसिद्ध कवि श्रीयुत माइकेल मधुसूदनदत्त पर यह छोटी सी पुस्तक लिखवा कर प्रकाशित की है । यदि इस पुस्तक से हिन्दी-जगत का कुछ भी उपकार हुआ तो हम संस्कृत, बँगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के सुप्रसिद्ध कवियों पर आलोचनात्मक पुस्तकें लिखवा कर शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे ।

विनीत—

प्रकाशक

माइकेल मधुसूदनदत्त

जन्म और बाल्यकाल।

माइकेल मधुसूदनदत्त का जन्म २८ जनवरी सन् १८२४ ई० को यशोहर के अन्तर्गत सागरदाँड़ी नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता राजनारायणदत्त चार भाइयों में सबसे छोटे थे। भाई लोग इनका बड़ा आदर करते थे इसीलिये ये लड़कपन से ही भोग-विलास में अभ्यस्त हो गये थे। लेकिन विलास-प्रिय होने के कारण इन्होंने कभी पढ़ने-लिखने में असावधानी नहीं की। फ़ारसी भाषा के अच्छे परिडत होने के कारण इन्हें लोग मुन्शी राजनारायण कहते थे। ये अर्थोपार्जन के लिये अपनी जन्म-भूमि छोड़ कर कलकत्ते में चले आये थे और अपनी विद्या-बुद्धि से सदर दीवानी अदालत में एक प्रसिद्ध वकील हो गये थे। उस अदालत में इनके समान वकील बहुत कम थे। आप अपने अन्य भाइयों की तरह बहुत धन पैदा करते और बहुत सा खर्च कर डालते थे। आप अच्छे दानी थे। माइकेल मधुसूदनदत्त ने पिता से विद्यानुरागिता, सहृदयता, बुद्धिमत्ता, उदारता, वाक्-पटुता आदि सद्गुणों के साथ ही विलासिता, अपरमितव्ययिता, आत्मश्लाघा आदि दोष भी पाये थे। आत्मसंयम ही वास्तविक मनुष्यता है यह पिता-पुत्र कोई न जानता था।

मधुसूदन के पिता ने पहली स्त्री के विद्यमान रहते ही तीन विवाह और किये थे। मधुसूदनदत्त पहली माता जाह्नवी दासी के गर्भ से हुए थे मधुसूदन की मां जाह्नवी दासी और शिवसुन्दरी स्वामी

के जीवनकाल में ही चल बसी थीं, तीसरी प्रसन्नमयी और चौथी हरकामिनी राजनारायण के परलोकवास के पश्चात् मरी थीं।

मधुसूदनदत्त ने पिता की भाँति अपनी मां से स्वाभाविक, सरल और उदार मन एवं प्रेमी, कोमल हृदय पाया था। उनकी मां के समान, स्नेहशीला, परदु:खकातरा, उदार और पतिव्रता स्त्रियाँ बहुत कम देखने में आती हैं। स्वामी की भाँति वे भी प्रचुर दान करतीं और आमोद-प्रमोद में धन व्यय करती थीं। यद्यपि उनके पति ने उनकी जीवितावस्था में ही और तीन व्याह कर लिये थे लेकिन उन्होंने पति के प्रति कभी विराग नहीं दिखलाया। मधुसूदन के मद्रास चले जाने पर—जब उनके पति राजनारायण ने, दूसरा विवाह करने की इच्छा प्रकट करते हुए उनसे कहा—"देखो हमारा पहला पुत्र तो हम लोगों को छोड़ गया, तुमसे दूसरी सन्तान होने की आशा नहीं है जल-पिंड कौन देगा?" तब इन्होंने प्रसन्नमुख होकर कहा था—"आप दूसरा विवाह कर लीजिए, आपके मंगल में मेरा भी मंगल है, अगर पुत्र उत्पन्न होगा, तो आप भी स्वर्ग पाने के अधिकारी होंगे और मैं भी।" जाह्नवी दासी के इस अपूर्व पति-प्रेम और सरल-हृदयता के कारण ही कई शादी करने पर भी उनके पति का प्रेम उनके प्रति तनिक भी कम नहीं हुआ था। मधुसूदन के खीष्ट धर्म ग्रहण कर लेने पर भी इन्हीं के अनुरोध से राजनारायण बहुत दिनों तक धन द्वारा मधुसूदनदत्त की सहायता करते रहे। जिस समय राजनारायण ने अपने ग्राम में दूसरा विवाह किया उस समय जाह्नवी दासी कलकत्ते में थीं। विवाह के बाद उन्होंने उन्हें एक मर्मभेदी पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने लिखा था—"मैंने जो कुकर्म किया है उसे तुमने सुना है। अगर तुम उससे असन्तुष्ट हो तो मुझे जीवन त्याग देना ही अच्छा है, क्योंकि इस संसार में

केवल दो आदमियों का प्रेम पाया जाता है या तो माता का या पत्नी का। माता तो परलोक चल बसीं, रह गई तुम, तुम्हारे लिये ही मैं गृहस्थाश्रम में हूँ यदि मैं तुम्हारे प्रेम से भी वंचित हो जाऊँ तो इस संसार को छोड़ दूँगा। तुम्हारे लिये जो दासी लाया हूँ उसे उसके पिता के घर भेज देना पड़ेगा।" पहली पत्नी के प्रति इतना प्रेम होते हुए भी राजनारायण ने दूसरा व्याह क्यों किया? शायद इससे बहुत से लोगों को आश्चर्य हो लेकिन आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है क्योंकि उस समय के धनी लोगों में बहुविवाह दूषित नहीं समझा जाता था, दूसरे मधुसूदन के खीष्ट धर्म में दीक्षित हो जाने से वंश में किसी के न रहने से जलपिंड के लोप होने का भी भय था, इसलिये उन्होंने कई व्याह किये थे। पहली पत्नी के प्रति प्रेम की कमी कई शादी करने का कारण कदापि न थी।

जिस समय मधुसूदन पैदा हुए थे उस समय उनका परिवार खूब धन सम्पन्न था; इसलिये उनके जन्म आदि संस्कारों के उत्सव बड़े समारोह के साथ हुए थे इनके जन्म के चार वर्ष के भीतर प्रसन्नकुमार और महेन्द्रकुमार नाम के इनके दो भाई और हुए थे लेकिन वे बाल्यावस्था मे ही क्रमशः एक वर्ष और पाँच वर्ष की उम्र में चल बसे। मधुसूदन के और कोई भाई या बहिन नहीं हुई। अपने कुटुम्ब में सबसे छोटे भाई के इकलौते पुत्र होने के कारण लोग इन्हें बहुत चाहते थे और इनका लड़कपन ऐसे आदर और सुख-चैन से बीत रहा था कि बहुतेरे राज-कुमारों का भी वैसा न व्यतीत होता होगा। बहुत प्रेम होने के कारण इनके गुरुजन हर काम में इनकी सहायता करते थे जब जो मन में आता था कर डालते थे इन्हें कोई विशेष रूप से नहीं रोकता था। इसलिये ये लड़कपन से ही स्वेच्छाचारी

हो गये थे, आगे चलकर भी इनकी यह आदत बनी ही रही; आत्मसंयम तो इन्होंने जाना ही नहीं कि किसे कहते हैं ?

मधुसूदन छोटी अवस्था में ही गाँव की पाठशाला में पढ़ने के लिये बैठाये गये। उस समय उनके पिता कलकत्ते के सदर दीवानी अदालत में वकालत करते थे मधुसूदन अपनी माँ के साथ सागरदाँड़ी के मकान में रहते थे यद्यपि धनियों के लाड़-प्यार से पलनेवाले लड़के पढ़ने-लिखने की ओर विशेष ध्यान नहीं देते, लेकिन मधुसूदन पढ़ने-लिखने में कभी असावधानी नहीं करते थे, वे पढ़ने-लिखने में बड़ा उत्साह रखते थे और हमेशा अपनी कक्षा के लड़कों में सबसे आगे रहने की कोशिश करते थे, यद्यपि उस समय की पाठशालाएँ आजकल की पाठशालाओं से एकदम विपरीत ढग से चलती थीं। उस समय के ग्राम की पाठशालाओं के शिक्षक पॉच, छः वर्ष के छोटे छोटे बालकों को भी बेंत से मारना अनुचित नहीं समझते थे, ऐसा विरला ही लडका निकलता था जिसने अपने शरीर पर बेंत का दाग लगे बिना पढ़ना-लिखना सीखा हो। किन्तु पाठशाला की ऐसी स्थिति होते हुए भी मधुसूदन पाठशाला में पढ़ने के लिये जाने का आग्रह करते थे। पाठशाला के विद्यार्थियों में किस तरह मैं सर्वश्रेष्ठ होऊँ इसके लिये वे सदैव चिन्तित रहते थे उनके लड़कपन की यह उमंग और इच्छा आगे की पाठशालाओं तथा कालेज में प्रवेश करने तक बनी रही, लिखने-पढ़ने में किसी सहपाठी का बढ़ना वे किसी तरह न सह सकते थे।

मधुसूदन को बाल्यकाल में ही काव्यानुराग और विद्याप्रेम का गुण अपनी माता द्वारा प्राप्त हुआ था। यद्यपि उस समय की स्त्रियों में विरली ही कोई लिखना-पढ़ना सीखती थी तौभी इनकी माता जाह्नवी दासी भलीभाँति लिखना पढ़ना जानती

थीं । वे रामायण, महाभारत और कविकंकण चंडी आदि बँगला के काव्य-ग्रन्थों को बड़े आदर और नियम से पढ़ती थीं, और उनमें की कुछ कविताएँ कंठस्थ करती थीं। माता की देखा-देखी मधुसूदन भी इन ग्रन्थों को पढ़ते और अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति द्वारा उन्हें शीघ्र कंठस्थ कर लेते थे। इस प्रकार बाल्यकाल में ही रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों से मधुसूदन को प्रेम हो गया था, यह प्रेम कभी टूटा नहीं। क्रिश्चियन् होकर युवावस्था में संस्कृत, अँगरेजी, फारसी, लैटिन, ग्रीक, पारसीक, जर्मन और इटालियन संसार की इन आठ प्रधान भाषाओं को सीख कर जब इन्होंने वाल्मीकि, होमर, आर्जिल, दांते, कालिदास, शेक्सपीयर आदि महाकवियों की कविताओं का रसास्वादन कर लिया था उस समय भी अपने शिशुकाल के सहचर कृत्तिवास के रामायण और काशीरामदास के महाभारत को आदर के साथ पढ़ते थे। शैशवावस्था में बार बार रामायण और महाभारत पढ़ने के कारण इनकी स्वाभाविक काव्यशक्ति विकसित हो गयी थी। मधुसूदन की काव्यानुरक्ति का दूसरा कारण उनकी बाल्य-शिक्षा है। मधुसूदन शैशवकाल में गाँव की जिस पाठशाला में पढ़ते थे उसके शिक्षक महाशय बड़े काव्य-प्रेमी थे, वे बँगला के अतिरिक्त संस्कृत, फ़ारसी और कुछ अँगरेजी भी जानते थे। वे अपने छात्रों को फारसी की कविताएँ सुनाते थे और उनसे फारसी की कविताएँ कंठस्थ करवा कर आवृत्ति करवाते थे। इस तरह से वे छात्रों में कवितानुराग उत्पन्न करने की चेष्टा करते थे। गुरु के आज्ञानुसार मधुसूदन ने छोटी अवस्था में ही फ़ारसी की बहुत सी ग़जलें याद कर ली थीं। मधुसूदन की काव्यानुरक्ति का तीसरा कारण उनका संगीत प्रेम है, अपने पिता और चाचादि के स्वभावानुसार बाल्यकाल से

ही आपको संगीत से भी प्रेम हो गया था। इनका संगीत प्रेम किसी भी अवस्था में नहीं बदला। बैरिस्टर हो जाने पर एक बार इनके पास कोई संगीतज्ञ ब्राह्मण मुकदमे के लिये सलाह लेने आया था, आपने उससे बारबार अनुरोध करके दस पन्द्रह सखी-सम्वाद सुनकर बिना कुछ लिये हुए ही सलाह दी थी। मधुसूदन के काव्यानुराग का चौथा कारण उनकी जन्मभूमि का प्राकृतिक सौन्दर्य है। उनकी जन्मभूमि सागरदाँड़ी ग्राम को तीन तरफ से घेर कर बहती हुई कपोताक्षी नदी, शस्यश्यामला-भूमि, सुन्दर मनोहर घने घने वृक्ष, तरुलताएँ, पपीहे की "पी कहाँ", "पी कहाँ" की प्रेमभरी बोली, ये सब नीरस-हृदय मनुष्य के मन में भी सुन्दर भाव उत्पन्न करनेवाले थे फिर सरस हृदय की तो बात ही क्या।

कालेज में प्रवेश और अँगरेजी शिक्षा का प्रभाव।

यद्यपि जब तक मधुसूदन अपने ग्राम में रहे तब तक उन्हें कविता रचने के अभ्यास का सुयोग नहीं प्राप्त था फिर भी उनके अन्दर जो एक शक्ति मौजूद थी वह शिक्षा-वृद्धि के साथ ही साथ अपना प्रभाव दिखला रही थी। हम पहिले कह चुके हैं लड़कपन से ही उन्हें संगीत का बड़ा शौक था, शैशवावस्था में उनका कंठस्वर भी बड़ा मधुर था। वे बहुत से गाने कंठ करके उन्हें गाया करते थे और जब कभी गाते गाते कोई चरण भूल जाते थे तो स्वयं बनाकर जोड़ देते थे। कभी कभी स्वयं दो एक गाने बना कर अपने साथियों को भी सुनाते थे। उन्होंने अपने गुरु महाशय से जिन फ़ारसी गज़लों को सीखा था उनका अनुकरण करने की कोशिश करते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें कहानियाँ गढ़ने का भी अभ्यास था वे नयी नयी कहानियाँ गढ़

कर अपने साथियों को सुनाया करते थे। इस तरह उनकी कल्पना शक्ति लड़कपन से ही विकसित हो रही थी।

जब मधुसूदन बारह-तेरह वर्ष के हुए, तब उनके पिता ने उन्हें शिक्षा देने के लिये कलकत्ते में लाने का संकल्प किया। पिता के इच्छानुसार उन्होंने पहले खिदिरपुर के किसी अँगरेजी स्कूल में भरती होकर कुछ दिन तक पढ़ा, उसके बाद वे १८३७ ई० के आसपास सुप्रसिद्ध विद्यालय हिन्दू कालेज में भरती हुए। यह वही विद्यालय है जिसमें प्यारीचाँद मित्र, केशवचन्द्र सेन, भूदेव मुखोपाध्याय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, रामतनु लाहिड़ी, रामगोपाल आदि बङ्गाल के दर्जनों रत्नों ने शिक्षा पाई है। मधुसूदन के जीवन और काव्य को भली भांति समझने के लिये उनके कालेज-जीवन की कुछ आलोचना करना अत्यावश्यक है क्योंकि उनके ऊपर कालेज-जीवन का बहुत गहिरा प्रभाव पड़ा था।

जिस समय मधुसूदन कालेज में पढ़ रहे थे उस समय बङ्गाल के नवीन शिक्षित समुदाय में एक गहिरा विप्लव मच रहा था इस विप्लव के दो प्रधान कारण थे। पहला कारण हिन्दू कालेज के विख्यात शिक्षक डिरोज़िया थे और दूसरा कारण पाश्चात्य साहित्य और दर्शन का प्रवेश था। पश्चिमीय साहित्य और दर्शन पर डिरोज़िया का असाधारण अधिकार था। यद्यपि तेइस वर्ष की ही उम्र में उनकी मृत्यु हो गयी लेकिन इतनी कम उम्र में ही उन्होंने जैसी विद्या-बुद्धि प्राप्त कर ली थी, उतनी कम उम्र में वैसी विरले ही को प्राप्त होती है। हिन्दू कालेज के छात्रों पर डिरोज़िया का जैसा अधिकार था वह सोचा भी नहीं जा सकता। डिरोज़िया की प्रशंसा उनकी कवित्व-शक्ति या विद्या-बुद्धि के लिये उतनी नहीं थी जितनी कि छात्रों की मनोवृत्ति-विकाश करने के यत्न के लिये थी। जान पड़ता है कि इस विषय में उनकी क्षम-

वरी का आज तक कोई विदेशी शिक्षक नहीं हुआ । वे कालेज के समय के अतिरिक्त छात्रों को घर पर बुलाकर भी शिक्षा देते थे वे उन्हें पश्चिमीय कवियों के उत्कृष्ट उत्कृष्ट भागों में से रोम, ग्रीस आदि देशों के महापुरुषों का स्वदेश प्रेम, सत्यनिष्ठा, आत्मत्याग आदि का वृत्तान्त पढ़ कर सुनाया करते थे। उनकी शिक्षा का ढंग ऐसा रोचक और आकर्षक था कि कलकत्ते से बहुत दूर रहनेवाले विद्यार्थी वर्षा के दिनों में मूसलाधार जल बरसते रहने पर भी उनके घर पढ़ने के लिये पहुँच जाते थे । कालेज में पढ़ाते समय वे 'हेसपरस' (Hesperus) और कालेज छोड़ने के बाद 'ईस्ट इंडियन' (East Indian) नामक पत्र का सम्पादन करते रहे । वे अपने छात्रों को सदैव इन पत्रों में लेख लिखने का अनुरोध करते रहे । इसके फल स्वरूप उनके शिष्यों में बहुत से अँगरेजी के अच्छे लेखक हो गये थे । डिरोज़िया की शिक्षा से बहुत से कर्मशील, देश और समाज भक्त नवयुवक पैदा हुए थे । सुप्रसिद्ध रामगोपाल घोष, कृष्णमोहन बन्दोपाध्याय, दक्षिणा-रंजन मुखोपाध्याय, रसिक कृष्णमल्लिक और रामतनु लाहिड़ी आदि डिरोज़िया के ही शिष्य थे इन लोगों ने अपने सत्कार्यों द्वारा बंगाल का बड़ा भारी उपकार किया है ।

डिरोज़िया अपने छात्रों को केवल अँगरेजी भाषा की ज्ञान-वृद्धि का उपदेश देकर ही नहीं रह जाते थे । वे उन्हें ऐसा उप-देश भी देते थे जिससे कि वे सत्यनिष्ठ, सदाचारी, कर्त्तव्यशील और स्वदेश तथा स्वजाति के प्रेमी बनें । डिरोज़ियां भारत को अपने स्वदेश के समान ही चाहते थे वे भारत के अतीत-गौरव को स्मरण कर विह्वल हो जाते थे भारतवर्ष के सम्बन्ध में पत्र-पत्रिकाओं में लेख और कवितायें लिखते थे। वे अपने छात्रों को सदैव सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलनों में

भाग लेने के लिये उत्साहित किया करते थे। भारत के माङ्गलिक कार्यों को देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी उनका क्लास धर्म नीति और समाज के विविध विषयों पर वाद-विवाद करने का क्षेत्र था। किसी बिषय की सत्यता या असत्यता निर्णय करने के लिये छात्रगण निःसंकोच होकर उनसे वाद विवाद करते थे। छात्रों की चिन्ता-शक्ति और विचार शक्ति की वृद्धि के लिये उन्होंने माणिकतल्ले में सिंहबाबू के उद्यान में 'एकेडेमी' (Academy) नाम की एक विवाद सभा स्थापित की थी। इस सभा की इतनी ख्याति थी कि उसकी बैठकों में प्रायः सुप्रीम कोर्ट के जज और गवर्नर जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी के समान उच्चपदस्थ व्यक्ति उपस्थित रहते थे। डिरोज़िया, सभा हो या कालेज हो अपने छात्रों को सर्वत्र निरपेक्ष और स्वाधीन-भाव से विचार करने को कहते थे वे संसार के किसी धर्म को पूर्ण नहीं मानते थे। वे कहते थे कि पुरानी सभी बातों को ठीक और नये सभी सिद्धान्तों को ग़लत मानना ठीक नहीं; तर्क और विचार की कसौटी पर कसने से जो खरा उतरे उसी को सत्य और ग्राह्य मानना चाहिये: चाहे वह प्राचीन हो या नवीन, पाश्चात्य हो या पूर्वीय। डिरोज़िया की शिक्षा के प्रभाव से उस समय के छात्र-संमाज में एक नवीन युग उत्पन्न हो गया था उन लोगों ने हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में लेख लिखकर, घोर आन्दोलन मचा दिया था। उन लोगों ने कालेज से पार्थिनन (Parthenon) नाम का एक समाचार-पत्र निकाला था, उसमें हिन्दू धर्म के दोषों के विरुद्ध इतने लेख रहते थे कि अन्त में कालेज के अधिकारियों को उसे बन्द करने का हुक्म देना पड़ा था। इस प्रकार यद्यपि डिरोज़िया एक शिक्षक के पद पर ही थे लेकिन वे वस्तुतः समाज सुधार का कार्य करते थे।

यद्यपि डिरोज़िया की शिक्षा में उपर्युक्त बहुत से गुण थे लेकिन उनका सदुपयोग न होने के कारण उनमें कुछ दोष भी आ गये थे। डिरोज़िया अपने छात्रों के हृदय में जिस परिणाम में स्वाधीनता का विचार उत्पन्न कर सके उस परिणाम में आत्म-संयम और भक्ति-भाव का संचार न कर सके। उस समय तक छात्र लोग अपने शास्त्रों के निर्णीत विचारों का पालन करते आ रहे थे। एकाएक युक्ति की कसौटी देकर डिरोज़िया की शिक्षा ने उन्हें स्वतन्त्र-प्रिय बनाने के बदले में उच्छृङ्खल कर दिया। डिरोज़िया हिन्दू शास्त्रों के पण्डित न थे इसलिये और भी खराबी हुई। हिन्दुओं के प्रायः सभी मत भ्रमात्मक और सब आचार कुसंस्कारमूलक समझे जाने लगे। पुराण के तैंतीस करोड़ देवता, सती-प्रथा आदि को देखकर वे सभी संस्कारों को बुरा समझने लगे सुरापान, गोमांस-भक्षण यवनों के हाथ का छुआ खाना आदि उन्हें समाज-संस्कार की चरमसीमा मालूम होने लगी, उन लोगों ने संसार की सभी विजयिनी जातियों को गोमांस-भक्षक देखकर स्वयं भी गोमांस खाना शुरू किया। वे एक साथ मिल कर गोमांसादि खाते थे और हड्डियाँ पड़ोसियों के घरों में फेंक देते थे, इन लोगों की देखादेखी इसका प्रचार दूसरे कालेज़ों और स्कूलों में भी होने लगा। इनको इस तरह कुपथ पर जाते देखकर लोग अपने लड़कों को अँगरेजी शिक्षा देने से डरने लगे।

डिरोज़िया की शिक्षा से विद्यार्थियों में जो भाव उत्पन्न हो रहा था उसे एक और अनुकूलता प्राप्त हो गयी जिससे भारत का सर्वनाश हो गया। इसी समय भारत की गवर्नमेंट ने यह प्रश्न उठाया था कि भारतवासियों को कैसी शिक्षा दी जाय? प्रसिद्ध विद्वान् अलेकजेंडर डफ भारतीयों को अँगरेजी भाषा द्वारा पाश्चात्य-

दर्शन, विज्ञान और साहित्य की शिक्षा देने के पक्षपाती थे और सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ 'होरेस हेयान उइलिसन' देशीय भाषा द्वारा शिक्षा देने के पक्षपाती थे। राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य और बाबू रामकमल सेन ने प्राच्य-शिक्षा का समर्थन किया था लेकिन अंत में लार्ड मेकाले के समर्थन से अँगरेज़ी भाषा द्वारा भारतीयों को पाश्चात्य-दर्शन और विज्ञान की शिक्षा देने का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। मेकाले ने कहा, हिन्दू जाति निस्सार है और हिन्दू शास्त्रों में कुछ भी जानने योग्य बातें नहीं हैं। संस्कृत के निरक्षर भट्टाचार्य लार्ड मेकाले ने अपने अभ्यासानुसार यहाँ तक कह डाला,—"A single shelf of a good European librery is worth the whole native litierateur of India and Arabia" अर्थात् 'किसी यूरोपीय उत्कृष्ट पुस्तकालय की एक आलमारी भी सारे संस्कृत और अरबी साहित्य के बराबर है' मेकाले तथा अन्य विदेशियों ने प्राच्य-साहित्य की तीव्र आलोचना की। इस आन्दोलन के कुछ दिन पहले सती-प्रथा पर बड़ा भारी आन्दोलन हो चुका था। सती-प्रथा निवारण के पक्षपातियों ने हिन्दू शास्त्रों के समस्त भ्रम और प्रमादों को लेकर सती-प्रथा के पक्षपातियों की तीव्र आलोचना की। इनकी तरह अँगरेज़ी शिक्षा के पक्षपातियों ने भी संस्कृत ग्रन्थों की अलौकिक और अतिशयोक्ति पूर्ण बातों को लेकर अपने विरुद्ध पक्ष की कड़ी समालोचना की। उन लोगों ने कहा—'जिस साहित्य में हनुमान जी सरीखे वीर को लँगूर लिखा है और दही, दूध तथा घृत आदि के समुद्रों के मथन का वर्णन है उसमें जानने योग्य क्या मिल सकता है!' इन सबका परिणाम यह हुआ कि नवीन अँगरेज़ी शिक्षित मनुष्य संस्कृत-साहित्य को तुच्छ समझने लगे, उसके पढ़नेवालों का मज़ाक उड़ाने

लगे। इसका फल यहाँ तक बुरा हुआ, कि वे अपने पूर्व पुरुष युधिष्ठिर, राम, कृष्ण आदि के वंशजों का नाम तक भूल गये। जातीय भाव एकदम लुप्त सा हो गया। जब संस्कृत जैसे साहित्य की यह दशा थी तब भला बँगला की कौन कहे। वे लोग बँगला में बात करने और चिट्ठी लिखने में अपना अपमान समझने लगे।

इस विप्लवयुग का कुछ अच्छा प्रभाव भी पड़ा था, डिरोज़िया के छात्रो ने उच्छृंखल होकर हिन्दू-समाज के नियमों का संशोधन करना आरम्भ किया। वे लोग सोचने-विचारने के बाद जो बात निश्चित करते थे उसे निर्भीक होकर कार्य रूप में परिणत करते यही उनका विशेष गुण था। इस गुण के फलस्वरूप हिन्दू-समाज में विधवा-विवाह प्रचलित हो गया, तिलक लगाने, तुलसी की माला धारण करने, डाक्टरी दवा सेवन करने आदि से समाजच्युत होने के कठोर नियम ढीले पड़ गये। इससे भी बड़ा लाभ देशी साहित्य को पहुँचा। अँगरेजी साहित्य के काव्यों में और ग्रन्थों में जो नव्यभाव और सद्गुण थे उन्होंने उसे बँगलादि देशी भाषाओं में प्रविष्ट किया। यदि अँगरेजी साहित्य का प्रभाव बँगला पर न पड़ता तो माइकेल मधुसूदनदत्त, हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे कवियों के उत्पन्न होने की आशा न थी। बँगलादि देशी भाषाओं के गद्य का तो अँगरेजी प्रभाव के पूर्व कुछ अस्तित्व ही न था।

मधुसूदन की शिक्षा के आरम्भ के वक्त बंगाल के शिक्षित समाज की क्या दशा थी इसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। अब यह देखना चाहिए कि मधुसूदनदत्त के ऊपर उस समय का क्या प्रभाव पड़ा था। यद्यपि मधुसूदन डिरोज़िया के कालेज छोड़ने के बाद कालेज में भरती हुए थे। लेकिन उस समय के छात्र लोग भी डिरोज़िया के छात्रों के आचार-व्यवहार

का अनुकरण करते थे । विदेशी साहित्य पर अन्धभक्ति, स्वदेशी साहित्य और आचार-विचार से अश्रद्धा, पाश्चात्य आचार-व्यवहार और साहित्य का पक्षपात, उस समय के विद्यार्थियों के प्रधान गुण थे । इन गुणों ने मधुसूदन पर भी अपना प्रभाव डाला। खीष्ट धर्म ग्रहण करने के पहले ही ये हिन्दू आचार-विचार और साहित्य से घृणा करने लगे थे तथा मद्यपान एव निषिद्ध वस्तुओं का भक्षण करने लगे थे। युवावस्था में शैशव-काल के संस्कार और विप्लवयुग के प्रभाव दोनों ने उन्हें प्रभावित किया था। लड़कपन के प्राच्य-भाव और कालेज के पाश्चात्य-प्रभाव दोनों ने मिलकर इनके कार्यों को परस्पर विरोधी कर दिया था। पूजा के दिन देवी की प्रतिमा देखकर उनकी आँखों से अश्रुधारा नहीं रुकती थी लेकिन यदि उन्हें कोई मिस्टर न कह कर बाबू कहता था तो उन्हें बुरा लगता था। इस प्रकार शैशवकाल की शिक्षा के प्रभाव से उनके हृदय में जातीय भांव और कालेज की शिक्षा के प्रभाव से बाहर साहबी भाव प्रदर्शित होता था। इस विचित्रता ने उनकी कविता पर भी प्रभाव डाला है। उन्होंने रामायण के कथानक और पात्रों को लेकर काव्य ग्रन्थ लिखे हैं लेकिन उनमें पांश्चात्य काव्यों की घटनाएँ भर दी हैं। उस समय की शिक्षा से प्रभावान्वित होकर मधुसुदन अंगरेजी के साधारण कवि को कालिदासादि से बढ़कर मानते थे इसीलिये उन्होंने ऐसा किया है। इस प्रकार यद्यपि आज पाश्चात्य शिक्षा ने बँगला का बहुत कुछ उपकार किया है लेकिन उसने मधुसूदन की तरह बहुतेरों का जातीय भाव लुप्त करके बहुत बड़ी हानि पहुँचाई है। यदि उनका जातीय भाव लुप्त न होता तो वे इससे कई गुना बड़ा कार्य कर गये होते।

मधुसूदनदत्त के पढ़ने के समय शिक्षित समाज की क्या

दशा थी और उनके ऊपर उसका क्या प्रभाव पड़ा था ऊपर इसी का वर्णन किया गया है। अब उनकी शिक्षा का कुछ निजी विवरण दिया जाता है। मधुसूदन जिस समय हिन्दू कालेज में पढ़ने गये थे, उस समय वे अपनी पूर्ण यौवनावस्था में थे। उस समय कालेज-विभाग में प्रसिद्ध विद्वान् कप्तान रिचर्डसन गणितज्ञ रिज़, हालफोर्ड, क्लिंट आदि और जोन्स साहेब स्कूल विभाग के प्रधान शिक्षक थे। इनके अतिरिक्त श्रीयुत रामचन्द्र मित्र और श्रद्धास्पद रामतनु लाहिड़ी आदि भी स्कूल विभाग के शिक्षक थे। कालेज में प्रवेश करते ही मधुसूदनदत्त की सबसे अच्छे विद्यार्थियों में गणना होने लगी, वे सभी परीक्षाओं में सर्वप्रथम आते थे उन्होंने अपने पहले से पढ़नेवाले अधिक उम्रवाले विद्यार्थियों को भी पछाड़ दिया। उस समय किसी कक्षा में नियत समय तक पढ़ने की रुकावट नहीं थी, एक परीक्षार्थी एक बार में दो तीन कक्षाओं की परीक्षा दे सकता था अतएव मधुसूदनदत्त अपनी विलक्षण बुद्धि और मिहनत के प्रभाव से जल्दी जल्दी परीक्षाओं को पास कर, कई एक कक्षाओं को पास करते हुए ऊँची कक्षा में जा पहुँचे। कालेज का तेज से तेज विद्यार्थी भी उनसे स्पर्धा न कर सकता था। उस समय कालेज की अन्तिम कक्षा का पाठ्यक्रम आजकल के बी० ए० से कम न था किसी किसी अंश में कुछ अधिक ही था। मधुसूदनदत्त १८३७ ई० में कालेज में भरती हुए थे, १८४२ ई० में लगभग ६ वर्ष में उन्होंने ए, बी, सी, डी, से आरम्भ करके अपनी विलक्षण-बुद्धि के प्रभाव से इतने कम समय में ही बी० ए० पास कर लिया। उनके समकालीन व्यक्तियों तथा सहपाठियों में से बहुत से सुप्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। श्रीयुत प्यारीचरण सरकार, प्रसन्नकुमार सर्वाधिकारी, गोविन्दचन्द्रदत्त, जगदीशनाथ राय, किशोरीचाँद

मित्र, ज्ञानेन्द्रमोहन ठाकुर, भूदेव मुखोपाध्याय, आनन्दकृष्ण वसु, राजनारायण वसु और भोलानाथ चन्द्र आदि बहुत से विख्यात छात्र इस समय हिन्दू कालेज में पढ़ते थे।

मधुसूदनदत्त के शैशवकाल की विद्यानुरागिता और उच्चाभिलाषा कालेज में और भी बढ़ी। ग्राम्य पाठशाला की भांति वे कालेज में भी किसी विद्यार्थी को अपने से न बढ़ने देने का सदैव यत्न करते थे और इसके लिये यथेष्ट अध्ययन भी करते थे। लेकिन वे केवल एकदम पुस्तकों के ही कीड़े न थे, सह-पाठियों के साथ आमोद-प्रमोद और खेल में भी खूब सम्मिलित होते थे। परन्तु उनका मन पढ़ने में भली भांति संलग्न हो जाता था वे पढ़ते समय भूख-प्यास सब कुछ भूल जाते थे। उन्होंने पाँचवीं कक्षा में ही इतनी अँगरेजी की पुस्तकें पढ़ डाली थीं, जितनी कि आज कल एक बी० ए० के अधिकांश अच्छे विद्यार्थी भी न पढ़ते होंगे। आरम्भ से ही साहित्य के प्रति उनका विशेष अनुराग था इसलिये जैसा कि अधिकांश साहित्य-सेवकों के जीवन में देखा जाता है उनको साहित्य पर अधिक प्रेम होने के कारण गणित से अरुचि सी हो गयी थी। यद्यपि मधुसूदन लड़-कपन में गणित में तेज थे लेकिन जैसे जैसे उनका जीवन साहि-त्यिक होता गया गणित से उन्हें विराग होने लगा; कालेज के गणित के घंटे में वे बैठकर काव्य-ग्रन्थ पढ़ा करते थे। पर गणित यत्न करने पर भी उन्हें नहीं आता था ऐसी बात नहीं थी। गणित में मन नहीं लगता था इसीलिये वह उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

मधुसूदन केवल कालेज के सुयोग्य छात्र ही न थे बल्कि अच्छे लेखक के नाम से भी प्रसिद्ध थे। वे सभा-समितियों में अपनी अँगरेजी रचनाएँ भी पढ़कर सुनाते थे उस समय हिन्दू

-कालेज के अनेक छात्र पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखा करते थे, स्कूल के लड़के भी हस्तलिखित पत्र निकालते थे। उस समय के विद्यार्थियों को लेखक होने का बड़ा शौक था। उस समय हिन्दू कालेज के शिक्षक बाबू रामचन्द्र मित्र 'ज्ञानान्वेषण'-नाम की मासिक पत्रिका का सम्पादन करते थे इस पत्रिका में कालेज के कुछ विद्यार्थी लेखादि लिखा करते थे। जब मधुसुदन को यह मालूम हुआ तो उन्होंने भी 'ज्ञानान्वेषण' में लिखना आरम्भ किया। इनकी लेख-प्रणाली से बाबू रामचन्द्र मित्र बड़े प्रसन्न हुए कालेज की पाँचवीं श्रेणी मे पढ़ते समय सत्रह वर्ष की अवस्था में ही इनके लेख निकलने लगे।

विद्या-प्रेम और उच्चाभिलाषा की ही तरह उनकी प्रेम-प्रवणता और परदुःखकातरता भी विकसित हुई थी। वे किसी दुखी छात्र या भिखमंगे को देखते ही दुःख के द्रवीभूत हो जाते थे, पिता के धनी होने के कारण उन्हें धन की कमी न थी इसलिये वे दीन-दुःखियों की यथेष्ट स ायता करते थे। लेकिन इससे भी अधिक उल्लेख योग्य उनकी प्रेम-प्रवणता है। गृहस्थी में प्रवेश करते ही बालक विद्यार्थी पढ़ने के समय का प्रेम भूल जाते हैं इसीलिये लड़कों की बन्धुता की हसी उड़ाई जाती है लेकिन मधुसुदन के जीवन में यह बात चरितार्थ नहीं हुई, जिसके ऊपर लड़कपन में उनका प्रेम हो गया वह प्रेम, क्या युवावस्था क्या वृद्धावस्था सभी अवस्था में एक सा बना रहा कभी कम नहीं हुआ। उनके लड़कपन के मित्रों में से श्रीयुत भूदेव मुखोपाध्याय और श्रीयुत गौरदास वशाक का नाम उल्लेख योग्य है। जीवन का भिन्न भिन्न लक्ष्य होते हुए भी इन लोगों का प्रेम कभी कम नहीं हुआ। मित्रों के प्रति मधुसुदन का कितना अधिक प्रेम था इसे भलीभाँति दिखलाने के लिये मैं मधुसूदन

क दो पत्रों को उद्धृत करता हूँ जो उन्होंने अपने मित्रों को लिखे थे।

(पहला पत्र)

खिदिरपुर, २५ नवम्बर १८४२

प्रिय मित्र,

मैंने तुमसे एक बार संकेत रूप से कहा था कि जब तक डी. एल. आर गैरहाजिर रहेगा तब तक मैंने कालेज से अलग रहने का विचार, या यों कहो कि इच्छा कर ली है। अब मैंने इस सम्बन्ध में अपनी राय पक्की कर ली है कि जब तक डी. एल. आर. न लौटेगा तब तक मैं कालेज न जाऊँगा, वह कितने ही दिन बाहर क्यों न रहे, मुझे जरा भी परवा नहीं है। चन्द लोगों को छोड़कर—जिनसे मैं प्रेम करता हूँ और जो मुझसे प्रेम करते हैं—बाकी लोगों के लिये मुझे कोई विशेष प्रेम नहीं है। और मि० केर (Korr) से तो मैं घृणा करता हूं—इससे मेरा कोई नुक-सान न होगा—कुछ भी न विगड़ेगा—छात्रजीवन की नामवरी और पुरस्कार आदि के लिये तनिक भी परवा नहीं है—हाँ, एक बात की चिन्ता अवश्य है, वह यह है कि यह मुझको तुम्हारी सोहबत के आनन्द से वंचित कर देगा। यह चापलूसी सी मालूम होती है, पर ऐसी बात नहीं है। यह सत्य है। संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसे मैं तुम्हारे जितना प्यार करता हूँ। तुम में उत्तमता, दयालुता, निःस्वार्थता और कोमलता के सभी गुण मौजूद हैं; और तुममें क्या नहीं है? मेरे मित्र! परमेश्वर तुम्हारा भला करे। मुझको स्वप्न में भी यह खयाल न हुआ था कि इस छल-पूर्ण संसार में तुम्हारे जैसा सच्चा और सच्ची दोस्ती को ग्रहण करनेवाला हृदय मुझको मिलेगा। जब तक मैं जीऊँगा,

मेरा भाग्य. मुझको चाहे जिस देश में ले जाय, मैं तुम्हें मैत्री के कोमलातिकोमल भावों के साथ याद रखूँगा, जब मैं इंगलैंड जाऊँगा—जो अवसर कि अब दूर नहीं है—(आगामी जाड़े में)—तो मेरी इच्छा है कि तुम्हारी एक तसवीर ले जाऊँगा, चाहे इसमें कितना ही खर्च क्यों न पड़े, मैं इसके लिये अपने कपड़े तक बेच सकता हूँ। मैं तुम्हारी एक छोटी तसवीर चाहता हूँ। आज मैं इसी विषय पर विचार कर रहा हूँ और इस काम को मैं जरूर करूँगा अगर मौका मिले तो इंग्लैंड के लिये प्रस्थान करने के पहले ही मैं तुम्हारा चित्र लेना चाहता हूँ। मैंने अपने पास तुम्हारे सुन्दर व्यक्तित्व की एक तसवीर रखने का पका इरादा कर लिया है। अब मैं इस विषय पर बहुत लिख चुका। इसे चापलूसी मत समझना—कभी नहीं—कभी नहीं—कभी नहीं। क्या तुम अपने कवि को देखने के लिए आगामी रविवार को यहाँ आओगे ? मोती को अपने साथ लाना। इसकी सूचना मुझको पहले ही दे देना (क्योंकि मैं गरीब हूँ) ताकि मैं तुम्हारे ऐसे मित्र के स्वागत के लिए मैं तैयार हो सकूँ। पर यह खयाल फजूल है। मैं जानता हूँ कि तुम न आओगे। तुममें सब कुछ है, पर अपनी सुन्दर परिस्थिति से मेरी तुच्छ कुटी को सम्मानित करने की प्रवृत्ति तुममें नहीं है !!! यह चिट्ठी काफ़ी बड़ी हो चुकी है तो भी मुझे कुछ पंक्तियाँ और लिखने दो।

मेरे पिता कल अपने एक अच्छे मित्र के यहाँ जा रहे हैं। हम यात्रा में शरीक न होंगे। जब तुम कालेज जाना तो मोती, माधव और वंकू को—यदि वे भिखमंगे कालेज जायँ तो, मेरी याद दिलाना। मैं टामस मूर लिखित अपने प्यारे वायरन की जीवनी पढ़ रहा हूँ। सच कहता हूँ, बहुत ही अच्छी किताब है। आह ! यदि मैं एक महाकवि हो जाऊँ; मेरी यही इच्छा होगी कि

तुम मेरी जीवनी लिखो। यदि तुम ऐसा करोगे तो मुझको कितनी प्रसन्नता होगी! और मुझे विश्वास है कि यदि इंगलैंड जाऊँ तो मैं महाकवि अवश्य होऊँगा।

विश्वास करो, मैं तुम्हारा अत्यन्त प्रेमी मित्र हूँ।

एम० एस०-दत्त॥

(दूसरा पत्र)

२७ नवम्बर (रात)

यह पत्र मैं तुम्हारी उस छोटी सी पत्रिका की समालोचना करते हुए लिखता हूँ जो तुमने मेरे विस्तृत पत्र के उत्तर में लिखी है, तुम पहिले ही दरवाजे पर लड़खड़ाने लगते हो (प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः) यह कोई शुभ लक्षण नहीं है। देखो, तुमने लिखा है—"आइ सेन्ड यू दी शेक्शपियर (I send you the Shakespear.)" अगर तुम मेरे शिष्य 'गौर' होते, तो —इसको सच मानो—मैं तुमको इतना पीटता कि तुम मर जाते, अथवा कोई और कठोर दंड देता। "किसी व्यक्तिवाचक संज्ञा के पहिले 'दी' आर्टिकल—'ए' भी—नहीं लगाया जाता..." इत्यादि, इत्यादि। और भी "दी मूर्स पोयम—The Moor's Poem !!!" इत्यादि इत्यादि। भविष्य में इसका ख्याल रखना। "तुम मेरा पत्र पसन्द करते हो।" ओहो! तुम मुझे फुसलाते हो, बहुत ही फुसलाते हो—और मैं सन्तुष्ट हो गया! मैंने टाम्स लिखित बायरन की जीवनी समाप्त कर ली है। जिस अध्याय में मेरे श्रद्धापात्र की मृत्यु का वर्णन है, उसे पढ़ते पढ़ते मेरी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। लेकिन डी (D) कौन है जो कहता है कि मैं टाम के उस भाग को बिना आँसू बहाये पढ़ सकता हूँ मैं तुम्हारे लिये यह पुस्तक भेजता हूँ, और मेरी यह

विशेष इच्छा है (ध्यान रक्खो, तुम्हें मेरी आज्ञा माननी होगी, क्योंकि मैं तुम्हारी आज्ञा मानता हूँ) कि तुम को यह पुस्तक अवश्यमेव पढ़नी होगी—चाहे इसे पढ़ने में तुम्हारी कुछ भी हानि क्यो न हो। यह पुस्तक M की है, इसके साथ उसके लिये एक पत्र भी है। जब तुम उससे कालेज में मिलो तो यह उसे दे देना।—आजकल तुम्हारी क्या दशा है। ऐ कालेज के रहने वालो! हिन्दू कालेज एक सांसारिक नर्क है, जिसका सर्दार पैशाचिक शक्तिवाला मि० केर है (तुम्हें और कुछ लोगों को छोड़ कर)। पत्र समाप्त करने के पहिले मैं पूछता हूँ कि क्या तुम आज संध्या को Mechanical Institution आओगे? उत्तर में मैं केवल 'हाँ'—या—'ना' चाहता हूँ। हम वहीं मिलेंगे, कृपा करके मेकानिकल इन्स्टिट्यूशन जाने के विषय में पूछे हुए अन्तिम प्रश्न का उत्तर अवश्य देना।

तुम्हारा वही

अभिन्नहृदय मित्र,

मधुसूदनदत्त ।

ऊपर उद्धृत किये हुए पत्रों से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि मधुसूदनदत्त अपने मित्रों से कितना प्रेम रखते थे। जो मनुष्य अपने एक मित्र के केवल चित्र निमित्त अपने धुले हुए कपड़ों तक को बेचने के लिये तैयार रहता है जो अपने प्रेमी के विना अपनी जन्मभूमि में भी शान्ति नहीं पाता जो अपने प्रेमी का राजा और देवता रूप से वर्णन करके भी सन्तुष्ट नहीं होता, उसका प्रेम कैसा होगा यह शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता। लेकिन भोग-विलास की ओर प्रवृत्ति हो जाने के कारण मधुसूदन का यह प्रेम ही उनके सर्वनाश का कारण हुआ था। इस सम्बन्ध में उनका जीवन प्रसिद्ध अँगरेजी कवि लार्ड

बायरन से बहुत अधिक मिलता है। लार्ड बायरन और मधुसूदन का प्रेम पहले तो पवित्र भाव की ओर झुका हुआ था लेकिन अवस्था बढ़ते ही दोनों का प्रेम भोग-विलास की ओर झुक गया। इसी कारण दोनों का सर्वनाश हो गया। दोनों को जीवन में परितृप्ति नहीं मिली। बायरन की भाँति मधुसूदन ने भी भग्न-हृदय होकर लिखा है कि संसार का प्रेम, यश, अर्थ कुछ भी मुझे तृप्ति नहीं दे सके। दोनों मनुष्य यह जानते ही न थे कि तृप्ति आत्मसंयम से ही होती है, भोग-विलास और उच्छृङ्खलता से नहीं।

आत्मसंयमी और कर्त्तव्यपरायण न होने के कारण मधुसूदन-दत्त को जीवन में कभी शान्ति नहीं मिली। इन्हीं दोनों के अभाव से अतीव प्रतिभाशाली होते हुए भी मधुसूदन का जीवन दुःख और कलंकमय हो गया। उनके सर्वनाश का बीज लड़कपन में ही उनमें पड़ गया था। वे माता-पिता से प्रचुर परिमाण में धन पाकर उसे विलास में खर्च कर डालते थे। डिरोज़िया के छात्रों का प्रभाव उनपर भी पड़ा था। उस समय के विद्यार्थियों की सभ्यता के अनुसार उन्होंने भी छोटी अवस्था में मद्य पीना और निषिद्ध वस्तुओं का खाना आरम्भ कर दिया था उनकी शौकीनी और साहबी का भाव इसी से मालूम हो जायगा कि वे अँगरेजी नाइयों को एक मोहर तक देकर अपना बाल बनवाया करते थे। इसके अतिरिक्त वे लड़कपन से ही उच्छृङ्खल भी हो गये थे। पिता के एकलौते पुत्र होने के कारण मधुसूदन बहुत लाड़-प्यार से पाले जाते थे; अनुचित कार्य करते देखकर भी कोई कभी डाँटता न था। कालेज में पहुँचने पर भी इस दुर्गुण के संयत होने का कोई अवसर नहीं मिला, कालेज में जिन शिक्षक महोदय रिचार्डसन साहब को मधुसूदन आदर्श मानते थे वे स्वयं

नीतिपरायण न थे। उनकी दुर्नीति और उच्छृङ्खलता को लेकर कालेज के विद्यार्थी उनका मज़ाक उड़ाया करते थे। सुतरां मधुसूदन की दुर्नीति-परायणता कालेज में और भी बढ़ी, इसके बढ़ने का एक कारण और था। मधुसूदन को टमासमूर लिखित बायरन का जीवनचरित और उसकी मादकतापूर्ण कविता बड़ी ही प्रिय थी, बायरन का अनुकरण करके उन्होंने अनेक कविताएँ लिखी थीं, बायरन को आदर्श बनाने के कारण उन्हें सुनीति और मिताचार से अवज्ञा करने की आदत पड़ गयी थी। मधुसूदन प्रेम करके दूसरे को तो वस में कर लेते थे, लेकिन वे स्वयं अपने को किसी पर न छोड़ सकते थे। इसलिये उनके ऊपर किसी का अधिकार नहीं था। उन्हें इस भयंकर पतन से कोई अच्छा बचाने वाला न मिला, वे एक बार पतन की ओर झुक कर फिर न संभल सके; अभागे मधुसूदनदत्त सदैव के लिये दुर्नीति के गहिरे अंधकारमय गड्ढे में गिर पड़े।

ऊपर मधुसूदन के चरित्र के गुण-दोषों के विकाश, शिक्षादि का वर्णन किया जा चुका अब आगे मधुसूदन की प्रकृति-प्रदत्त कविता-शक्ति के विषय में कुछ लिखा जाता है।

शिक्षावस्था में कविता रचना का अभ्यास।

जिस प्रकार हिन्दू कालेज पर डिरोज़िया का प्रभाव पड़ा था उसी प्रकार उसके बाद मधुसूदन के समय में रिचार्डसन का प्रभाव पड़ा। जिस प्रकार बङ्गाल के राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों की आलोचना करते समय डिरोज़िया का उल्लेख करना अत्यावश्यक है; उसी प्रकार वर्त्तमान साहित्य-युग की आलोचना करने में रिचार्डसन का उल्लेख करना भी

परमावश्यक है। रिचार्डसन का झुकाव राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक विषयों की तरफ ज़रा भी नहीं था, उनका झुकाव साहित्य की ओर बहुत अधिक था। वे स्वयं एक लेखक और कवि थे। उस समय के भारतवर्ष और इंगलैंड के अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख और उनकी कविताएँ निकला करती थीं। अच्छी कविता करने के लिये उनकी इतनी ख्याति नहीं थी जितनी कि दूसरों की कविताओं के गुण-दोष के परख की। वे शेक्सपियर आदि अँग्रेजी कवियों के ग्रन्थों को ऐसा अच्छा पढ़ाते थे कि उनकी शिक्षा-प्रणाली देखकर मेकाले जैसे विद्वान् ने भी मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। कविता करने, लेख लिखने और अँग्रेजी कवियों के काव्य-ग्रन्थों को पढ़ने के लिये वे सदैव अपने विद्यार्थियों को उत्साहित किया करते थे। वे अपने छात्रों में भावग्राहकता और रसज्ञता बढ़ाने की चेष्टा सदैव किया करते थे, वे अपने विद्यार्थियों को सुलेखक और सुकवि बना सकने में ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझते थे। डिरोज़िया और रिचार्डसन की विभिन्न शिक्षाओं के विभिन्न परिणाम हुए। डिरोज़िया की शिक्षा से उनके छात्रों में राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक बनने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी और रिचार्डसन की शिक्षा से उनके विद्यार्थी लेखक और कवि बनने के लिये व्यग्र हो गये। वर्त्तमान बंगीय कविता-युग के प्रवर्त्तक माइकेल मधुसूदनदत्त, प्यारीचरण सरकार, भूदेव मुखोपाध्याय, गोविन्दचन्द्र दत्त, राजनारायण वसु और भोलानाथ चन्द्र आदि रिचार्डसन के ही छात्र थे।

रिचार्डसन अपने छात्रों को अन्य कवियों के ग्रन्थ पढ़ाने के साथ ही साथ कभी कभी अपनी अच्छी अच्छी कविताएँ पढ़कर सुनाते और कविता तथा लेख लिखने का अनुरोध करते थे।

इस प्रकार विद्यार्थियों में यह इच्छा उत्पन्न होती थी कि रिचार्डसन की भाँति मैं भी लेखक और कवि होऊँ। रिचार्डसन विद्यार्थियों की रचनाओं को सुनते और उन्हें शुद्ध कर दिया करते थे, विद्यार्थियों की जो रचनाएँ अच्छी होती थीं, उन्हें पत्रिकाओं में छपने के लिये भी भेज देते थे। इस प्रकार की अनुकूलता पाकर विद्यार्थियों का उत्साह बहुत बढ़ता था। दूसरे विद्यार्थी तो रिचार्डसन के गुणों का ही अनुकरण करके रह जाते थे लेकिन मधुसूदन उनके दोषों का अनुकरण करने में भी पीछे नहीं हटते थे। मधुसूदन को सर्वोत्कृष्ट कवि और लेखक होने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। रिचार्डसन ने उन दिनों इंगलिश कविताओं का एक संग्रह बनाया था। उसकी भूमिका में उन्होंने कविता के गुण दोषों का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया था। पुस्तक छपने से पूर्व उन्होंने उसे अपने छात्रों को पढ़कर सुनाया था। उसे सुनकर मधुसूदन हर्ष से पुलकित हो गये और अपने मन के आवेग को न रोक सकने के कारण बोल उठे—

"अहा यदि मैं इसका लेखक होता" (I wish I had been the outhor of it)। इन बातों से पाठक समझ सकते हैं कि मधुसूदन को अपनी मातृभाषा बँगला सीखने का कैसा सुयोग मिला था। अपनी मातृभाषा की कुछ भी शिक्षा न पाने पर भी मधुसूदन ने लड़कपन में केवल काशीराम दास के महाभारत और कृत्तिवास के रामायण को ही पढ़कर अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल से बँगला पर अधिकार प्राप्त कर लिया था।

कालेज में पढ़ते समय ही मधुसूदन की कविताएँ उस समय की पत्र पत्रिकाओं में निकला करती थीं। उससे मधुसूदन के सहपाठियों तथा अन्य लोगों को विश्वास हो गया था कि मधुसूदन भविष्य में अच्छे कवि होंगे। इसलिये उनके बहुत से

सहपाठी उन्हें कवि कह कर पुकारा करते थे; अपनी भावी उन्नति के सम्बन्ध में मधुसूदन को भी पूर्ण विश्वास था। एक वार उन्होंने अपने प्रिय कवि वायरन की जीवनी पढ़ते समय अपने मित्र श्रीयुत गौरदास को लिखा था—

I am reading Tom Moor's life of favourite Byron:—"A splendid book upon my word. Oh! How should I like to see you write my life, if I happen to be, a great poet, which, I am sure, I shall be if I can go to England!"

मैं टाममूर लिखित अपने प्रिय वायरन की जीवनी पढ़ रहा हूँ जो कि मेरे लिये एक अद्भुत पुस्तक है। ओ! मैं तुम्हें अपनी जीवनी लिखते देख कर कैसा प्रसन्न होऊँगा जब कि मैं एक बड़ा कवि होऊँगा; जिसके विषय में मेरा पूरा विश्वास है, अगर मैं इंगलैंड जा सका।

ऊपर के पत्र से पाठकों को मालूम होगा कि मधुसूदन का यह विश्वास था कि बिना इंगलैंड गये हुए मेरी कवित्व-शक्ति का अच्छा विकाश न होगा इसीलिये वे इङ्गलैंड जाने के लिये व्यग्र थे। लेकिन इङ्गलैंड जाने के पहले ही मधुसूदन ने मेघनाद वध; वीराङ्गना और व्रजाङ्गना आदि उत्कृष्ट काव्यों की रचना की थी। इङ्गलैंड जाने से वे अपने स्वदेश की बातें भूल से गये, उन्हें विदेश की सभी चीज़ों को अच्छा समझने की आदत सी पड़ गयी, इसलिये विदेश से लौटने पर उन्होंने जो दो एक पुस्तकें लिखीं वे मधुसूदन के गौरव को बढ़ा नहीं सकीं।

इङ्गलैंड जाने की ऐसी प्रबल इच्छा, उनकी, इङ्गलिश कविताएँ तथा उनका आचार-विचार देखकर बहुत से लोग मधुसूदन पर स्वदेश प्रेमी न होने का दोष मढ़ते हैं लेकिन ऐसी

बात कदापि नहीं थीं, उनके हृदय में स्वदेश के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था यदि स्वदेश, स्वजाति और अपनी मातृभाषा पर उनका आन्तरिक प्रेम न होता तो वे अपनी मातृभाषा में पुस्तकें लिख कर, अपनी मातृभाषा, जाति, और देश की सेवा कभी न करते इसके अतिरिक्त इङ्गलैंड जाने के पूर्व उन्होंने स्वदेश पर एक अँगरेजी कविता भी लिखी थी जिससे कि स्वदेश के प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम टपकता है। स्वदेश के आचार-विचार के प्रति उपेक्षा-भाव होने के कारण, उनकी शिक्षा और उनका संसर्ग था। दोष केवल उनकी विचार-शक्ति का ही था, हृदय का नहीं।

उपर्युक्त बातों से पाठकों को मालूम हुआ हो गया होगा कि मधुसूदनदत्त को उनके कवि-जीवन के अनुकूल ही शिक्षा मिली थी। रिचार्डसन द्वारा उनकी अन्तर्निहित प्राकृतिक कवित्व शक्ति तथा शैशवावस्था की उच्चाभिलाषी को काफी सहायता मिली थी। अट्ठारह वर्ष की ही अवस्था में उन्होंने भारत की प्रधान प्रधान इंगलिश और बँगला पत्रिकाओं में लेख और कविताएँ लिखना आरम्भ कर दिया था लेकिन उन्हें इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ उन्होंने इङ्गलैंड के Bentley's Miscellanty और Blacbwood's Magayine आदि पत्रों में भी कविता भेजना आरम्भ किया। इस प्रकार कालेज की शिक्षा से मधुसूदनदत्त काव्यानुरागी और अध्ययनशील बने लेकिन साथ ही उनमें उच्छृङ्खलता, विलास-प्रियता, अमितव्ययिता और धर्म तथा समाज-नीति से उदासीनता आदि दुर्गुण भी आ गये थे। उनके जीवन में इन सब गुणावगुणों ने क्या क्या रूप धारण किया आगे उसी का वर्णन होगा।

खीष्टधर्म ग्रहण और विशप्स कालेज में अध्ययन।

यद्यपि मधुसूदन में हिन्दू कालेज की शिक्षा के कारण इन्द्रियों के असंयम और उछृङ्खलता आदि कई दुर्गुण आ गये थे लेकिन उनका खीष्टधर्म ग्रहण करना कालेज की शिक्षा का प्रभाव कदापि नहीं था। कालेज की शिक्षा तो खीष्टधर्म ग्रहण के बिल्कुल विपरीत थी। उस समय के प्रधान शिक्षक डेविड हेयर और रिचार्डसन खीष्टधर्म की शिक्षा और खीष्टधर्म ग्रहण के एकदम विरोधी थे। डेविड हेयर हिन्दू कालेज से बहुत अधिक प्रेम रखते थे, वे बंगाल में अँगरेजी शिक्षा के प्रचार का उद्योग प्राणपण से करते थे लेकिन इस डर से कि हिन्दू कालेज के किसी विद्यार्थी के खीष्टधर्म ग्रहण करने से अँगरेजी शिक्षा के प्रचार में बाधा होगी; विद्यार्थियों पर इसकी कड़ी निगाह रखते थे कि किसी में खीष्टधर्म के प्रति अनुराग न उत्पन्न होने पावे। मि० रिचार्डसन भी शिक्षा देते समय कभी कभी खीष्टधर्म की अतिशयोक्ति पूर्ण तथा असंयत बातों को लेकर उसका उपहास किया करते थे। मधुसूदन के पहले के शिक्षक डिरोज़ियो तो किसी धर्म विशेष से प्रेम ही नहीं रखते थे उनका तो एक स्वतंत्र ही मत था। अतएव मधुसूदन को खीष्टधर्म ग्रहण करने की अनुकूलता हिन्दू कालेज़ से नहीं मिली थी। उनके जीवन की अन्य बातों की तरह उनकी खीष्टधर्म ग्रहण की बात भी रहस्य परिपूर्ण है। उनके मित्र तथा माता-पिता आदि इसकी कल्पना भी नहीं करते थे कि मधुसूदन खीष्टधर्म ग्रहण करेंगे; वे लोग मधुसूदन के खीष्टधर्म ग्रहण करने का संवाद सुनकर बड़े विस्मित हुए थे। मधुसूदन ने इसलिये खीष्ट धर्म नहीं ग्रहण किया कि खीष्टधर्म पर उनकी श्रद्धा और उनका विश्वास था। खीष्टधर्म ग्रहण करने से यूरोप

जाने में सुविधा होगी और अप्रीतिकर विवाह से छुटकारा होगा इन दो बातों को सोचकर ही उन्होंने खीष्टधर्म ग्रहण किया था। जिस समय मधुसूदन कालेज की द्वितीय श्रेणी में पढ़ते थे उस समय उनके माता-पिता ने एक प्रतिष्ठित धनी जमींदार की सुरूपवती कन्या से मधुसूदन का विवाह करना ठीक किया। लेकिन मधुसूदन ने इसमें अपनी अनिच्छा प्रकट की, उनके माता पिता ने लड़कपन की बात समझ कर मधुसूदन की बात पर ध्यान नहीं दिया। उस समय मधुसूदन ने भी कुछ विशेष ज़िद नहीं की। लेकिन जब विवाह की बात पकी हो गयी तब मधु-सूदन ने अपनी माता से कहा, "माँ! यह काम क्यों किया, मैं तो व्याह न करूँगा।" पुत्र का ऐसा विराग देखकर माता ने लड़के के रूप, गुण और ससुर के धनवान होने की बात कही। मधु-सूदन ने सब बातें सुनकर अंत में कहा, "माँ तुम कितना ही क्यों न कहो, बंगालियों की लड़कियाँ रूप और गुण में कभी अँगरेजों की लड़कियों के सवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकतीं।" पुत्र की यह बात सुनकर माता चौंक पड़ीं, वे भयभीत हो गयीं, और पुत्र का व्याह कर देने का प्रयत्न करने लगीं। अशिक्षित लड़की से विवाह होते और यूरोप जाने में बाधा आते देखकर मधुसूदन ने विवाह होने से बीस बाइस दिन पूर्व खीष्टधर्म ग्रहण कर लिया। यूरोप जाने की उनकी कैसी प्रबल इच्छा थी इसे हम पहिले ही लिख आये हैं।

'माता-पिता के कार्यों से विरक्ति के अतिरिक्त मधुसूदन किसी खीष्टधर्मावलम्बी युवती के रूप-गुण पर मुग्ध हो गये थे। दूसरे उस समय इङ्गलैंड जाना समाज में बहुत ही दूषित समझा जाता था मधुसूदन जानते थे कि इङ्गलैंड जाने से मुझे एक न एक दिन समाज-च्युत होना ही पड़ेगा। इसलिये खीष्टधर्म

ग्रहण से इङ्गलैंड जाने की सुविधा, मनोनीत युवती से व्याह और अप्रीतिकर विवाह से छुटकारा—इन तीनों बातों की सुविधा देखकर मधुसूदन ने खीष्टधर्म ग्रहण किया था। खीष्टधर्म ग्रहण करने का संकल्प करके वे एकाएक एक दिन घर से गायब हो गये। उनके पिता और अन्य लोगों को कभी इसका अनुमान नहीं था कि मधुसूदन खीष्टधर्म ग्रहण करेंगे। मिश्नरी लोग यह जानते थे कि मधुसूदन के पिता एक प्रसिद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति हैं। पिता को पता लग जाने पर पुत्र खीष्टधर्म ग्रहण नहीं कर सकता, इस डर से उन लोगों ने मधुसूदन को खूब सुरक्षित स्थान फोर्ट विलियम के किले में रक्खा। मिश्नरियों के इस व्यवहार से कलकत्ते के हिन्दुओं में खलबली मच गयी, लेकिन मधुसूदन की अनिच्छा और पादरियों की चतुराई के कारण मधुसूदन का पता नहीं चला। दो-चार दिन किले में पड़े रहने के बाद ६ फरवरी १८४३ ई० को मधुसूदन खीष्टधर्मावलम्बी हो गये। उसी समय से मधुसूदन के नाम के साथ माइकेल शब्द जुड़ गया। मधुसूदन की कवित्व शक्ति प्राकृतिक थी यह सम्भव नहीं था कि वे अपने जीवन की इतनी बड़ी घटना पर कोई कविता न बनावेंगे। उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण करते समय निम्नलिखित कविता सुनाई थी।

HYMN. (अभ्यर्थना)

By M. S. Dutt.

(Composed by him to be sung at the Baptism.*)

I

Long sunk in superstitions night,
By sin and satin driven.

---

* मधुसूदन के द्वारा रचा हुआ और 'बपतिस्मा' के समय गाया हुआ।

I saw not, cared not for the light,
That leads the blind to heaven.

चिरकाल से जड़ता रूपी रात्रि में निमग्न रहने के कारण और पाप तथा शैतान द्वारा भगाये जाने के कारण मैंने उस ज्योति (परमात्मा) को न देखा—न देखने की परवाह की—जो ज्योति अंधे को स्वर्ग में ले जाती है।

II

I sat in darkness reason's eye,
Was shut was closed in me;
I hasten'd to eternity,
O'er error dreadful sea!

मैं अन्धकार में बैठा था, विचार की आँख मेरे अन्तस्तल में बन्द थी, भयङ्कर दोषसागर को पार कर मैंने अनन्त के पास जाने की जल्दी की थी।

III

But now at length Thy grace, O Lord!
Bids all around me shine
I drink Thy sweet, Thy precious word,
I kneel before Thy shrine!—

लेकिन, हे प्रभो, तुम्हारे असीम अनुग्रह से अब अन्त में मेरे चतुर्दिक सम्पूर्ण पदार्थ प्रकाशमान है। मैं तुम्हारे अमूल्य मधुर वचनामृत का पान करता हूँ। मैं तुम्हारे मंदिर के सामने घुटने टेक कर झुकता हूँ।

IV

I've broke Affection's tenderst ties
For my blest Saviors sake

All, I have beneath Thy skies;
Lord ! I for Thee forsake !

अपने पवित्र त्राता के लिये मैंने ममता के कोमलातिकोमल बन्धनों को तोड़ दिया। मेरे प्रभो ! तुम्हारे आकाश के नीचे जितनी चीजों को मैं प्यार करता हूँ उन्हें तुम्हारे लिये त्याग देता हूँ।

खीष्टधर्मावलम्बी हो जाने पर मधुसूदन को अपना घर छोड़ देना पड़ा। जब उनकी माता ने सुना कि मधुसूदन सचमुच ईसाई हो गया तो उनके दुख की सीमा न रही। जिस दिन से मधुसूदन घर से गायब हुए थे, उस दिन से उनकी माता ने अन्न नहीं ग्रहण किया था। पुत्र के ईसाई होने का मर्मभेदी समाचार सुनकर वे पागल सी हो गयीं। उनकी दशा देखकर मधुसूदन के पिता गुप्त रूप से उन्हें कभी कभी घर पर बुलाया करते थे। इससे उनकी माता का कष्ट कुछ कम हो जाता था। मधुसूदन की माँ उन्हें पहिले की तरह प्रेम के साथ अपने सामने बैठा कर भोजन कराती थीं। लेकिन समाज के भय से अपने घर में ठहरा न सकती थीं। उनके माता-पिता ने मधुसूदन से कई बार शुद्धि कराकर हिन्दू धर्म में प्रवेश करने का अनुरोध किया लेकिन मधुसूदन इससे सहमत नहीं हुए। यद्यपि मधुसूदन ने इस प्रकार अपने माता पिता को त्याग दिया लेकिन उनके माता-पिता सदैव अपने प्यारे पुत्र की धन द्वारा सहायता करते रहे। उस समय के नियमानुसार ईसाई हो जाने पर मधुसूदन हिन्दू कालेज में नहीं पढ़ सकते थे इसलिये वे शिवपुर के 'विशप्स कालेज' में भरती हुए जहाँ पर ईसाइयों और अँगरेजों के लड़के पढ़ते थे।

मधुसूदन के जीवन में खीष्टधर्म ग्रहण करना बहुत बड़ी

घटना है । इससे मधुसूदन के जीवन रूपी नाटक का एकदम पट-परिवर्तन हो गया। यद्यपि मधुसूदन की तरह हिन्दू कालेज के बहुत से विद्यार्थी पाश्चात्य आचार-विचारों के पक्षपाती हो गये थे लेकिन अवस्था बढ़ने के साथ ही साथ वे फिर सुपथ पर आ गये थे। खीष्टधर्म ग्रहण करने से मधुसूदन के साहित्यिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन सभी में बड़ा भारी अन्तर पड़ गया। हिन्दू कालेज में पढ़ते समय ही मधुसूदन आधा साहेबी और आधा बंगाली वेष-भूषा और आचार-विचार रखते थे, बिशप्स कालेज में अंगरेजों के लड़कों के साथ रहने से वे पूरे साहबी रंग में रँग गये। यूरोप गमन, यूरोपीय युवती का पाणिग्रहण, साहित्यिक और सामाजिक-जीवन में परिवर्तन और अंत में दातव्य औषधालय में मृत्यु—सभी मधुसूदन के खीष्टधर्म ग्रहण के ही परिणाम थे। यदि वे हिन्दू समाज में रहते तो हिन्दू समाज के बन्धन और माता-पिता तथा परिवार के लोगों का संकोच रहने के कारण उनकी उच्छृङ्खलता स्वेच्छाचार और साहिबी-भाव बहुत कुछ कम हो जाता, लेकिन खीष्टधर्म ग्रहण करने के कारण उनके इन भावों में और भी वृद्धि हो गयी।

खीष्टधर्म ग्रहण करने से मधुसूदन का साहित्यिक जीवन बहुत परिवर्त्तित हो गया था। हम पहिले लिख चुके हैं कि कालेज में पढ़ते समय अपनी मातृ-भाषा बँगला के प्रति उनका कैसा अनुराग था इङ्गलिश रचना को छोड़कर वे बँगला की तरफ़ कभी ध्यान ही नहीं देते थे। पाठकों को यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा कि खीष्ट धर्म ग्रहण करना मधुसूदन को बँगला की ओर झुकाव का कारण हो गया था। यदि मधुसूदन हिन्दू कालेज से सीनियर परीक्षा पास करते तो अन्य छात्रों की तरह उन्हें भी कोई अच्छी नौकरी मिल जाती और वे कभी कभी कुछ इङ्गलिश

कविताएँ ही लिखकर रह जाते। लेकिन ख्रीष्टधर्म ग्रहण करने के कुछ दिन बाद उनके पिता ने भी उनकी सहायता करनी बन्द कर दी, इसलिये धन प्राप्ति के लिये उन्हें साहित्य की शरण लेनी पड़ी। सौभाग्यवश उस समय बँगला भाषा की उन्नति के लिये, लेखकों को उत्साह दिलाने के लिये राजा प्रतापचन्द्र, राजा ईश्वर चन्द्र और महाराजा यतीन्द्रनाथ जैसे उदाराशय सज्जन मौजूद थे। अँगरेजी साहित्य मधुसूदन के अर्थाभाव की पूर्त्ति न कर सका; अतएव उन्हें अपनी मातृ-भाषा बँगला की शरण लेनी पड़ी।

मधुसूदन की पुस्तकों में इतना अधिक विजातीय भाव होने का कारण भी ख्रीष्टधर्म ग्रहण करना है। मधुसूदन कालेज में ही आधे साहबी रंग में रँग चुके थे। मातृ-भाषा और हिन्दू आचार-विचारों से उन्हें विरक्ति हो गयी थी ख्रीष्टधर्म ग्रहण करके और यूरोपीय युवती से शादी करके वे विदेशी रंग में एकदम रंग गये थे, अतएव उनकी पुस्तक में विजातीय भावों की अधिकता स्वभाविक ही है। होमर की कविताएँ पढ़कर मधुसूदन उसे सर्व श्रेष्ठ कवि मानने और अपना आदर्श समझने लगे थे। उन्होंने अपने ग्रन्थों में रामायण के पात्रों को होमर के ही रंग में रँगने की कोशिश की है इसीलिये राम और लक्ष्मण जैसे चरित्रवान पात्रों का भी आदर्श-चरित्र गिर गया है।

हिन्दू कालेज में पढ़ते समय मधुसूदन की कवित्व-शक्ति के विकाश के लिये यथेष्ठ प्रोत्साहन मिल चुका था, विशप्स कालेज में आकर कई एक शिक्षकों को बहुभाषा-विज्ञ देखकर उन्हें भाषाओं के सीखने का शौक उत्पन्न हुआ। उन्होंने हिन्दू कालेज में केवल फ़ारसी और इंगलिश सीखी थी। विशप्स कालेज में आकर उन्होंने ग्यारह भाषाएँ और सीखीं। वे लैटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच और इटालियन भाषा में बेधड़क बात-चीत कर सकते

थे और पत्र आदि लिख सकते थे। इनमें से फ्रेंच और इटालियन भाषाओं पर तो इतना अधिकार था कि इन दोनों में वे कविता भी लिख सकते थे। इनके अतिरिक्त वे संस्कृत, पारसीक हिब्रू, तामिल, तैलङ्ग और हिन्दी में भी थोड़ी बहुत जानकारी रखते थे। मधुसूदन के समान बहुभाषा-विज्ञ उस समय शायद कोई था या नहीं, इसमें, सन्देह है। भाषाओं के सीखने में भी उनमें अपूर्व प्रतिभा थी।

यद्यपि मधुसूदन ने खीष्टधर्म ग्रहण कर लिया था लेकिन वे पादरियों के चापलूस नहीं थे। वे जब कभी उनका अनुचित व्यवहार देखते थे उसका प्रतिवाद करते थे। हम इस सम्बन्ध की एक घटना का यहाँ पर उल्लेख करते हैं। उस समय विशप्स कालेज के अँगरेज लड़के "कालेज कैप" नाम की एक चतुष्कोण टोपी पहिनते थे, वे यह टोपी देशी विद्यार्थियों को नहीं पहिनने देते थे। मधुसूदन ने उस टोपी को पहिनना आरम्भ किया तो शिक्षकों ने उन्हें टोका; लेकिन उन्होंने कहा कि जब मैं सारी पोशाक यूरोपियन पहिनता हूँ तो टोपी पहनना क्यों छोड़ूं ? एक ही स्कूल में भिन्न भिन्न जाति के विद्यार्थियों के साथ भिन्न भिन्न व्यवहार करना उचित नहीं है। शिक्षकों के बहुत मना करने पर भी मधुसूदन नहीं माने, तब शिक्षकों ने मधुसूदन को कालेज से निकालने का विचार किया। लेकिन माननीय कृष्णमोहन बन्दोपाध्याय ने बीच में पड़कर शिक्षकों को ऊँचा-नीचा समझा कर मामला शान्त कर दिया, मधुसूदन की घात रह गयी। इस घटना से पाठक समझ सकते हैं कि मधुसूदन में चापलूसी का भाव छू तक नहीं गया था वे एक निर्भीक मनुष्य थे।

यद्यपि विशप्स कालेज में चार वर्ष तक पढ़कर मधुसूदन

ने बहुत सी भाषाएँ सीखीं और काव्य के सम्बन्ध में भी उन्होंने यथेष्ठ उन्नति की; लेकिन उनकी उच्छृङ्खलता यहाँ और भी बढ़ गयी । माता-पिता के शासन और कालेज के बन्धन में रहते हुए भी वे अनेक अनुचित कार्य कर डालते थे, फिर विशप्स कालेज में तो उन्हें कोई कहनेवाला भी न था । एकदम बन्धन-हीन होने के कारण उनकी उच्छृङ्खलता बहुत अधिक बढ़ गयी । वे बीच बीच में अपने पिता के पास जाते थे । धर्म-सिद्धांत के ऊपर उनके पिता से उनकी खूब बहस होती थी; मधुसूदन उद्धत होकर अपने पिता को उत्तर दे देते थे इससे उनके पिता कुछ दिनों में उनसे रुष्ट हो गये और उन्होंने उन्हें सहायता देनी बन्द कर दी । पिता और पुत्र का यह विवाद देख कर मधुसूदन की माता बड़ी दुखी होती थीं । मनोनीता पत्नी पाने और इङ्गलैंड जाने आदि में से मधुसूदन की कोई भी इच्छा पूरी नहीं हुई; जिन मिशनरियों ने उन्हें बड़े बड़े प्रलोभन दिखलाये थे उन लोगों नें धोखा दिया पुराने मित्रों का स्नेह भी धीरे धीरे घटने लगा, मधुसूदन घर से तो गये ही थे खीष्टधर्म में दीक्षित होने से उन्होंने जो जो लाभ सोचे थे उनकी भी पूर्त्ति नहीं हुई । अतएव उनकी अशान्ति दिन पर दिन बढ़ने लगी । उनको यह मालूम होने लगा कि मेरा अपना कोई है ही नहीं । अन्त में उन्होंने सोचा कि बङ्गाल में रहने से तो शान्ति मिलने की आशा नहीं है कहीं दूसरी जगह चलना चाहिए । विशप्स कालेज में मदरास के बहुत से विद्यार्थी पढ़ते थे उनके साथ मधुसूदन की घनिष्टता हो गयी थी । उन लोगों से बातचीत करके मधुसूदनदत्त ने मदरास जाने का निश्चय किया और एक दिन अकस्मात् माता, पिता, मित्र आदि किसी से बिना कुछ कहे हुए वे बङ्गाल छोड़ कर चले गये ।

मद्रास-प्रवास ।

(१८४८ ई० से १८५६ ई० तक)

जिस समय मधुसूदन मद्रास आये उस समय मद्रास में न तो आजकल की तरह रेलवे लाइनें थीं न जहाज से ही आने का सुभीता था। अतएव आने जाने का सुभीता न रहने के कारण उस समय बङ्गाल के बहुत ही कम लोग मद्रास में रहते थे। मधुसूदन वहाँ के आचार, व्यवहार, भाषा आदि से भी परिचित नहीं थे। जातीय आचार, विचार, पोषाक आदि छोड़ देने से हिन्दू समाज उनसे घृणा करने लगा था। बङ्गाल से चलते समय वे अपनी पुस्तकें तथा और सामान बेच कर मद्रास आये थे, रास्ते में जो कुछ रुपया था उसका अधिकांश खर्च हो गया था। बङ्गाल में रहते समय यद्यपि मनोमालिन्य के कारण उनके पिता ने उन्हें सहायता देनी बन्द कर दी थी, लेकिन माता गुप्त रूप से उनकी सहायता करती रहती थीं इसलिये उन्हें अर्थाभाव से उत्पन्न कष्ट का अनुभव नहीं होता था। लेकिन मद्रास आकर उनके पास कुछ भी नहीं रहा; इसके अतिरिक्त यहाँ पहुँचते ही उन्हें बसन्त रोग ने सताया। उन्होंने निरुपाय होकर मद्रास के ईसाइओं और अँगरेजों की समाज से सहायता के लिये प्रार्थना की। उन लोगों ने मधुसूदन की प्रार्थना पर ध्यान दिया; उन्हें अँगरेजों के अनाथ बालकों के एक प्रसिद्ध विद्यालय में शिक्षक का कार्य मिल गया; मधुसूदन को इससे कुछ शान्ति मिली।

यद्यपि हिन्दू कालेज में पढ़ते समय मधुसूदन ने पत्र-पत्रिकाओं में अनेक अँगरेजी कविताएँ लिखी थीं लेकिन वे अभी तक अध्ययन और मनोविनोद के लिये ही अनेक भाषाएँ सीखते और कभी कभी कविता लिखा करते थे; परन्तु मद्रास में आकर

अर्थाभाव और निराशा के संघर्ष में पड़कर धन प्राप्ति के लिये कविता-रचना से उन्हें विशेष प्रेम हो गया। मदरास की सभी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में उन्होंने लेख और कविता लिखना आरम्भ किया और थोड़े ही दिनों में वे विख्यात हो गये; लोग उन्हें एक सुकवि, सुलेखक और विद्वान् समझने लगे। इसी समय उन्होंने "Madras circular" (मदरास सरकुलर) में "Captive lady" (कैपटिव लेडी, बंदी युवती) और Vision of the past (विज़न आव् दि पास्ट) में ख्रीष्टधर्म सम्बन्धी किसी प्रसंग को लेकर दो असम्पूर्ण कविताएँ लिखी थीं। इन दोनों कविताओं को लोगों ने बहुत पसन्द किया अतएव ये कविताएँ १८४९ ईसवी में पुस्तकाकार रूप में एक साथ ही प्रकाशित हुईं।

कैपटिव लेडी प्रकाशित होने के थोड़े ही दिन बाद मधुसुदन ने 'रेबेका मैकटाविस' नाम की एक स्काट रमणी से शादी की। रेबेका मैकटाविस मद्रास के अनाथ अँगरेज-बालक-बालिकाओं के आश्रम में रह कर अध्ययन करती थीं। बालकों के विद्यालय में पढ़ाने के कारण इनसे मधुसूदन की जान पहिचान हो गयी थी। धीरे धीरे दोनों में प्रेम बढ़ा मधुसूदन रेबेका के रूप और गुणों पर मुग्ध हो गये। पहिले तो रेबेका के पिता आदि इस विवाह से सहमत नहीं हुए लेकिन मधुसुदन से प्रेम रखनेवाले सम्भवतः युवती के धर्मपिता (God Father) ने मध्यस्थ होकर युवती के पिता आदि लोगों को सहमत किया। मधुसूदन पहिले से ही शिक्षिता तथा रूप गुणवती यूरोपीय महिलाओं को बङ्गाली युवतियों से सौगुना अच्छी समझते थे, ख्रीष्टधर्म में दीक्षित होने से उनका बचा खुचा संकोच भी मिट गया था। इसलिये उन्होंने युरोपीय युवती से शादी कर ली। लेकिन गृहस्थाश्रम में सहिष्णुता, आत्मसंयम और स्वार्थ-त्याग हुए बिना मनुष्य सुखी

नहीं रह सकता मधुसूदन में ये सब गुण नहीं थे इसलिये विवाह के बारह वर्ष बाद पत्नी से मधुसूदन का सम्बन्ध विच्छेद हो गया। इसके बाद उन्होंने मद्रास कालेज के किसी शिक्षक की लड़की कुमारी 'हेनृरियेटार' से प्रेम होने के कारण उसे पत्नी रूप से ग्रहण कर लिया। यह युवती ही अंत तक मधुसूदन के साथ पत्नी भाव से रही।

हम पहिले ही लिख चुके हैं कि मद्रास में मधुसूदन-रचित 'कैपटिव लेडी' की कितनी प्रशंसा हुई थी। मद्रास के प्रायः सभी पत्रों ने 'कैपटिव लेडी' की अच्छी समालोचना की थी मद्रास के बड़े बड़े विद्वानों ने भी उसका अच्छा आदर किया था एक समालोचक ने तो यहाँ तक कह डाला था कि इसमें अनेक स्थल ऐसे हैं जिसे बायरन या स्काट अपनी रचना कहने में संकोच न करते (What I believe neither Scott nor Byron would have been ashamed to own)। लेकिन मधुसूदन ने अपनी इस सुख्याति और प्रशंसा से अपने को धन्य नहीं समझा; उनकी अभिलाषा बहुत बड़ी थी उनके जैसे विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिये यह साधारण बात थी। जिस समय मधुसूदन की चारों तरफ ऐसी प्रशंसा हो रही थी उस समय मधुसूदन की आर्थिक और मानसिक अवस्था बड़ी खराब थी, वे प्रेस को पुस्तकों की छपाई देने के लिये चिन्तित होकर इधर उधर घूम रहे थे लेकिन कहीं से कुछ मिलता न था। मद्रास से निराश होकर मधुसूदन ने कलकत्ते की शरण ली, उन्हें पुरी आशा थी कि चाहे अन्धकाराछन्न मद्रास सहायता न करे लेकिन विद्या से देदीप्मान कलकत्ता मेरी सहायता जरूर करेगा इस आशा से उन्होंने कलकत्ते के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों में अपनी पुस्तक समाचोलना के लिये भेजी। लेकिन मधुसूदन को कलकत्ते

से भी निराश होना पड़ा। कलकत्ते के Hindu Intellegencer (हिन्दू इनटेलिजेन्सर) और 'हरकरा' आदि सभी पत्रों ने 'कैपटिव लेडी' की तीव्र आलोचना की; 'हरकरा' ने तो समालोचना नहीं दुरालोचना कर डाली। लेकिन मधुसूदन जिस प्रकार मदरास के लोगों की प्रशंसा से हर्षोन्मत्त नहीं हुए थे उसी प्रकार वे कलकत्ते की तीव्र आलोचना से निराश नहीं हुए। उनके कलकत्ते के मित्रों ने 'कैपटिव लेडी' की बिक्री की कोशिश करने में त्रुटि नहीं की, लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी वे पचास साठ पुस्तकों से अधिक न बेच सके। इस प्रकार चारों तरफ से निराशा के बादल घिर रहे थे, लेकिन मधुसूदन हताश होनेवाले नहीं थे उन्हें अपनी प्रतिभा और उच्चाभिलाषा पर पूर्ण विश्वास था, वे पीछे हटनेवाले नहीं थे।

'कैपटिव लेडी' की रचना उनका प्रथम प्रयत्न था। प्रथम प्रयत्न में उपेक्षित होकर और दरिद्रता तथा पारिवारिक अशान्ति का कष्ट पाकर मधुसूदन पीछे हटनेवाले न थे। सर्वोत्कृष्ट कवि एवं विद्वान् होने की उनकी उच्चाभिलाषा ज्यों की त्यों बनी रही। लेकिन वे अब तक लक्ष्य स्थल पर पहुँचने का जिसे आदर्श मानते थे, उस आदर्श में परिवर्तन हो गया। 'कैपटिव लेडी' प्रकाशित होने के पहिले वे अपने लक्ष्य स्थान तक पहुँचने का साधन अँगरेजी मानते थे; लेकिन अब उनका यह भ्रम दूर हो गया। अब वे यह समझ गये कि विदेशी भाषा में चिरस्थायी कीर्त्ति पाना कठिन है। कलकत्ते के कुछ सुहृदों ने उन्हें यह बात सुझा दी थी; उनमें भारत में स्त्री-शिक्षा के प्रवर्तक सुप्रसिद्ध महानुभाव ड्रिंकवाटर बेथून और मधुसूदन के प्रिय मित्र गौरदास का नाम उल्लेख करने योग्य है।

महात्मा बेथून बङ्गाल के प्रबन्ध मंत्री और शिक्षा-समाज

(Education council) के सभापति थे। वे देशी भाषाओं के प्रचार के बड़े पक्षपाती थे। बङ्गाली शिक्षित समाज में सदैव बङ्गला के प्रति प्रेम उत्पन्न करने और उसका अच्छा प्रचार करने का उद्योग किया करते थे। समाचार पत्रों में इसके लिये लेख लिखते थे और सभाओं तथा स्कूलों के वार्षिकोत्सवादि में सर्वत्र बँगला-प्रचार पर प्रेम प्रकट करते थे। इनके समान देशी भाषा के प्रचार का प्रेमी कोई बिरला ही विदेशी हुआ है। आपने मधु-सूदन की पुस्तक की अच्छी समालोचना की, उसके टेढ़े मेढ़े रास्ते को उपदेश पूर्ण नम्र भाषा में प्रगट कर उन्हें सरल सुगम और गन्तव्य मार्ग सुझा दिया; उन्हें बँगला में लिखने के लिये उत्साहित किया। उनके मित्र गौरदास ने भी उन्हें बँगला में लिखने का परामर्श दिया।

इसी समय से मधुसूदन का ध्यान अपनी मातृभाषा बंगला की ओर गया। यद्यपि उन्होंने कालेज में कभी मातृभाषा की ओर ध्यान नहीं दिया था, मद्रास आकर वे उसे बहुत कुछ भूल गये थे, लेकिन अब उन्होंने मातृभाषा को अपने लक्ष्य पर पहुँचने का आदर्श बना लिया था; इसलिये वे स्कूल के विद्यार्थी की भाँति बँगला की बहुत सी पुस्तकें मँगा कर उनका अध्य-यन करने लगे। उस समय उन्होंने अपने अध्ययन के विषय में अपने प्रिय मित्र गौरदास को जो पत्र लिखा था उससे मालूम होता है कि भोग-विलास-प्रिय होते हुए भी मधुसूदन कितना अध्ययन करते थे। श्रीयुत गौरदास ने लिखा था, आप इस तरह समय नष्ट न कीजिए; यदि आपने अपनी शक्ति मातृभाषा में लगाई होती तो बहुत अच्छा परिणाम होता। मधुसूदन ने उसके उत्तर में लिखा था—'आजकल मैं स्कूल के विद्यार्थी से भी अधिक परिश्रम करता हूँ मैं सवेरे ६ बजे से ८ बजे तक हिब्रू; ८ से १२

तक स्कूल में पढ़ाना; १२ से २ तक ग्रीक; २ से ५ तक तेलगू एवं संस्कृत; ५ से ७ तक लैटिन और ७ से १० तक अँगरेजी का अध्ययन करता हूँ। क्या इसे देख कर भी आप यह कहियेगा कि मैं अपनी मातृभाषा को अलंकृत करने का प्रयत्न नहीं कर रहा हूँ ?' विधाता ने मधुसूदन को प्रतिभा और स्वास्थ्य दोनों प्रदान किये थे वे उसका सद्व्यवहार करने में त्रुटि नहीं करते थे।

यद्यपि इस बीच में मधुसूदन मद्रास की एक मात्र दैनिक पत्रिका स्पेक्टेटर (Spectator) के सहकारी सम्पादक और प्रेसीडेन्सी कालेज के शिक्षक नियुक्त हो गये थे, एवं सुलेखक होने के कारण उनकी अच्छी प्रसिद्धि भी हो गयी थी; लेकिन अपरिमितव्ययी होने के कारण उन्हें अर्थाभाव से कष्ट हो रहा था, उच्छृङ्खल और असंयमी होने के कारण उनका गार्हस्थ्य-जीवन भी अशान्तिमय हो रहा था। इस समय तक कई एक ऐसी घटनाएँ हो चुकी थीं जिससे मधुसूदन को कलकत्ते आने की अनुकूलता मिल गई थी। मद्रास आने के तीन वर्ष बाद उनकी माता जाह्नवीदासी का स्वर्गवास हो गया था; मरते समय माता अपने प्रिय पुत्र को देखने के लिये बहुत व्याकुल हो उठी थीं, उनकी इस अन्तिम इच्छा की पूर्त्ति नहीं हुई। माता की मृत्यु के चार वर्ष बाद पिता भी देवलोकवासी हो गये थे। मधुसूदन को इसका समाचार नहीं मालुम था। उनके मद्रास चले आने के बाद न तो उनके पिता और अन्य सम्बन्धी लोग ही उनकी कुछ खोज खबर रखते थे, न मधुसूदन ही उनका समाचार जानने का यत्न करते थे। उनके मित्र लोगों में भी बाबू गौरदास को छोड़कर सभी उन्हें भूल गये थे। बाबू गौरदास और मधुसूदन में पहिले ही की भाँति प्रेम था। गौरदास ने मधुसूदन के पिता की सम्पत्ति पर दूसरे लोगों को कब्जा करते देख कर मधुसूदन को कलकत्ते

आकर पैत्रिक सम्पत्ति लेने के लिये लिखा। मधुसूदन मदरास छोड़ना ही चाहते थे, अतएव यह अनुकूलता पाकर वे कलकत्ते के लिये रवाना हो गये।
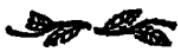
मदरास से स्वदेश प्रत्यागमन।

मधुसूदन ८ वर्ष के दीर्घकालीन प्रवास के बाद अपने स्वदेश को लौटे लेकिन स्वदेश में जो जो विशेषताएं होती हैं, वे दीर्घकालीन प्रवास के कारण इस समय लुप्तप्राय हो गयी थीं। मधुसूदन के माता-पिता तो मर ही चुके थे उनके पैत्रिक गृह पर भी दूसरे ने कब्जा कर लिया था। उनके रूप, रंग, डील-डौल और आवाज़ आदि में परिवर्तन हो जाने के कारण बहुत से सम्बन्धी तो उन्हें पहिचान ही न सके। जिन्होंने पहिचाना, उनका पहिचानना भी व्यर्थ ही था क्योंकि समाज के डर के कारण वे उनका सम्मान नहीं कर सकते थे। उनके बहुत से मित्रों में से कुछ तो परलोक चल बसे थे कुछ उन्हें भूल गये थे। किसी तरफ उनका कोई परिचित नहीं दिखलाई पड़ता था। वे अपनी मातृभाषा भी भूल से गये थे, बातचीत इङ्गलिश में ही करते थे

केवल मधुसूदन के जीवन में ही परिवर्तन नहीं हुआ था उस समय की राजनीति, धर्मनीति, समाज आदि सभी विभागों में बड़े ज़ोरों से परिवर्तन हो रहा था। यद्यपि ये परिवर्तन मधुसूदन के प्रवास के पूर्व ही आरम्भ हो गये थे लेकिन इस समय ये अपनी प्रौढ़ावस्था पर पहुँच गये थे। विधवा-विवाह के लिये तो बङ्गाल के प्रत्येक गाँव में आन्दोलन मच गया था पाश्चात्य भाषा और समाज से प्राच्य भाषा और समाज का संघर्ष होने के कारण एक नवीन शक्ति उत्पन्न हो रही थी। ऐसे

उपयुक्त समय पर स्वदेश में लौटकर मधुसूदन भी साहित्यिक प्रवर्त्तकों में एक मुख्य व्यक्ति हो गये ।

मधुसूदन साहित्य प्रेमी थे, वे सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनों से अधिक दिलचस्पी नहीं रखते थे । इस समय बंगाल के साहित्यिक संसार में भी यथेष्ठ परिवर्तन हो गया था; मधुसूदन के समय में बंगाल के नवीन शिक्षित लोग मातृभाषा की इतनी उपेक्षा करते थे कि वे यह कहने में अपना गौरव समझते थे कि मैं बँगला भाषा नहीं जानता । लेकिन अब वैसी दशा नहीं थी । श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी, बाबू अक्षयकुमारदत्त और महात्मा देवेन्द्रनाथ ठाकुर के अपूर्व उद्योग से बंगला भाषा की कुछ और ही दशा गयी थी । उपर्युक्त सज्जनों के उद्योग से प्रतिष्ठित 'तत्त्वबोधनी पत्रिका' ने बंगाल के नव शिक्षित समाज के विचारों में क्रान्ति मचा दी थी । अब लोग यह समझने लग गये थे कि मातृभाषा बँगला उपेक्षा की वस्तु नहीं है, उसमें भी सभी विषयों को व्यक्त करने की अपूर्व शक्ति मौजूद है । उस समय डेविड हेयर की स्मृति में अँगरेजी शिक्षित लोगों ने एक सभा कायम की थी । इस सभा की सारी काररवाई अँगरेजी में ही होती थी । उसमें सबसे पहिले अक्षय बाबू ने बँगला में भाषण दिया उनके भाषण के प्रभाव से प्रभावित होकर 'इंडियन फील्ड' के प्रसिद्ध सम्पादक बाबू किशोरीचांद मित्र, अँगरेजी शिक्षित समाज के अग्रणी श्रीयुत कृष्णमोहन बन्दोपाध्याय आदि लोगों ने भी बँगला में ही भाषण देना आरम्भ किया । इस प्रकार सभाओं में अधिकांश लोग बँगला में ही भाषण करने लगे । 'हेयर' के स्मरणार्थ जो सभा होती थी उसमें सर्वोत्तम लेख लिखकर सुनानेवाले को पारितोषिक देना भी निश्चित किया गया । इस प्रकार बँगाल के नव-

शिक्षित समाज में जो भारी भ्रम फैला हुआ था वह दूर हो गया और बँगला की दिन पर दिन उन्नति होने लगी। इन लोगों के प्रयत्न से कई एक पत्रिकाएँ निकलने लगीं। उनमें से मुख्य मुख्य पत्रिकाओं के नाम ये हैं—डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के सम्पादकत्व में विविध विषयों से पूर्ण 'विविधार्थ संग्रह' रेवरेंड कृष्णमोहन बन्दोपाध्याय के सम्पादकत्व में 'विद्याकल्पद्रुम' और प्यारीचाँद मित्र तथा बाबू राधानाथ शिकदार के सम्पादकत्व में 'मासिक पत्रिका' नाम की पत्रिका निकलती थी। इन पत्रिकाओं में वैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक और पुरातत्व आदि विषयों पर अनेक लेख निकलते थे जिससे गद्य साहित्य की उन्नति का द्वार खुल रहा था। परन्तु पाश्चात्य कवियों के आदर्श पर कविता लिखनेवाला कोई न था। इस अभाव की पूर्ति मधुसूदनदत्त ने की। इसके लिये वे बँगाल में उपयुक्त समय पर पहुँचे थे।

यद्यपि मधुसूदन के बँगाल आने के पूर्व श्रीयुत ईश्वरचन्द्र गुप्त अपने 'प्रभाकर' पत्र द्वारा नवीन ढंग की कविता रच कर लोगों में भारतचन्द्र आदि की शृंगार रस की कविताओं से जो विशेष रुचि थी उसे परिवर्तित कर रहे थे लेकिन बँगला साहित्य में यूरोपीय ढंग की रचना कर बँगला के पद्य साहित्य में नवयुग लाने का काम मधुसूदनदत्त ने ही किया। श्रीयुत ईश्वरचन्द्र गुप्त अधिकतर हास्य रस की और व्यङ्गपूर्ण कविताएँ ही लिखते थे उनकी कविताएँ इतनी अच्छी होती थीं कि कभी कभी 'प्रभाकर' की अधिक माँग होने के कारण उन्हें उसका दूसरा संस्करण निकालना पड़ता था। लेकिन वे अँगरेजी नहीं जानते थे, अँगरेजी पढ़े लिखे लोगों से उनका बहुत सम्पर्क था, उन्होंने उनसे बहुत सी अँगरेजी कविताएँ सुनी थीं; वे उन कविताओं का अनुकरण करके उस ढंग की कविताएं लिखा करते थे। लेकिन

अँगरेजी साहित्य से विशेष परिचय न होने के कारण उनकी अधि-कांश कविताओं के भाव आदर्श और ढंग प्राचीन ही होते थे। इसके अतिरिक्त व्यङ्ग की ओर अधिक झुकाव होने के कारण कभी कभी उनकी कविता अधिक अश्लील हो जाती थी। लेकिन गुप्त जी अपने समय के सबसे बड़े प्रभावशाली कवि थे उस समय के अधिकांश कवि उनकी कविता का अनुकरण करने में अपना बड़ा गौरव समझते थे। वङ्किम बाबू जैसे सुलेखक भी छोटी अवस्था में उन्हीं का अनुकरण करके कविता करते थे। श्री ईश्वर-चन्द्र गुप्त ने लोगों की रुचि में किंचित परिवर्तन किया था। मधुसूदनदत्त ने उस रुचि को पूर्ण परिवर्तित करके वह मार्ग दिखलाया जिस मार्ग पर चल कर आज बंगला का पद्य साहित्य अपनी इस वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुआ है।

हम पहिले ही लिख चुके हैं कि जिस समय मधुसूदन अपने स्वदेश को लौटे उस समय कलकत्ते में उनकी क्या स्थिति थी। प्रिय सुहृद बाबू गौरदास को छोड़ कर सभी उन्हें भूल गये थे। उन्हीं के प्रयत्न से मधुसूदनदत्त को उस समय के पुलिस मजि-स्ट्रेट बाबू किशोरीचाँद मित्र की अधीनता में एक लेखक का कार्य मिल गया, और उसके कुछ दिन बाद ही उनको भाषान्तर-कारी (Interpreter) का कार्य मिल गया। इसके अतिरिक्त मधुसूदन तत्कालीन संवादपत्रों में लेख कवितादि भी लिखा करते थे। लेकिन पत्रों में लिखना झंझट और विपत्ति पूर्ण समझ कर उन्होंने छोड़ दिया। इसके कुछ दिन बाद ही मधुसदन को वेलगाछिया नाट्यशाला के लिये रत्नावली नाटक का अँगरेजी अनुवाद करने का कार्य मिल गया।

उस समय अँगरेजों का नाटक-प्रेम देखकर बंगाल के धनी मान्य और विद्वान सज्जनों का झुकाव नाटक की तरफ हो गया

था। पहिले तो लोगों के घर पर ही शकुन्तला, वेणीसंहार, विक्रमोर्वशी आदि नाटक खेले गये। भिन्न भिन्न मनुष्यों के घर पर नाटक खेले जाने के कारण सामान जुटाने में बहुत परिश्रम और धन व्यय होता था। अतएव सुप्रसिद्ध बाबू आशुतोष देव के घर पर जब शकुन्तला नाटक खेला जा चुका तब नाटक प्रेमी सुप्रसिद्ध महाराजा यतीन्द्रमोहन ने बातचीत में राजा ईश्वरचन्द्र से कहाः—एक दिन के आमोद में इतना खर्च हो जाता है यदि एक चिरस्थायी नाट्यशाला स्थापित हो जाती तो बड़ी सुविधा होती। राजा ईश्वरचन्द्र पहिले से ही बंगला-नाटकों के प्रेमी थे। महाराजा यतीन्द्रमोहन का यह प्रस्ताव उन्हें तथा उनके बड़े भाई प्रतापचन्द्र दोनों को पसंद आया। उनके मित्रों ने भी इस प्रस्ताव पर प्रसन्नता प्रगट की। अतएव उक्त तीनों महानुभावों के उद्योग से बेलगाछिया के उद्यान में नाट्यशाला का निर्माण हुआ। उसके पहिले बँगला-साहित्य में कोई भी अच्छा नाटक नहीं था। उस समय हिन्दू कालेज के विद्यार्थी रामनारायण 'तर्करत्न' ने 'कुलीन कुल सर्वस्व' नामक नाटक बनाया था जो खेला जा चुका था उस पर रंगपुर के ज़मीदार बाबू कालीचन्द्रराय ने पुरस्कार भी दिया था।' अतएव श्री रामनारायण तर्करत्न महाशय को ही उपयुक्त समझ कर बेलगाछिया नाट्यशाला के स्थापकों ने उसे श्री हर्षदेव रचित रत्नावली नामक संस्कृत नाटिका के आधार पर एक बँगला नाटक बनाने का अनुरोध किया। लेकिन इतने से ही काम नहीं चला। नाट्यशाला के स्थापकों से उच्च राजकर्मचारियों से विशेष सम्बन्ध था; वे लोग और उनके पारसी, यहूदी आदि अन्य मित्र गण नाटक देखने के लिये आनेवाले थे, वे बँगला-नाटक नहीं समझ सकते थे इस कारण उनके समझने के लिये कुछ साधन

होना आवश्यक था, अतएव नाट्यशाला के स्थापकों ने रत्नावली का अँगरेजी अनुवाद कराकर बँगला से अपरिचित मित्रों में बांटने का निश्चय किया। बेलगाछिया नाटक में भाग लेने वालों में बाबू गौरदासबशाक भी थे। उन्होंने मधुसूदनदत्त के ऊपर इसका भार देने का प्रस्ताव किया। मधुसूदनदत्त की इङ्गलिश कविता सम्बन्धी विलक्षण प्रतिभा और विद्वत्ता से सभी परिचित थे। बेलगाछिया नाट्यशाला के संचालकों ने यह कार्य सहर्ष मधुसूदनदत्त को प्रदान किया। मधुसूदन अपनी वाक्पटुता, विद्वत्ता आदि गुणों से शीघ्र ही बेलेगाछिया नाट्यशाला के संस्थापक राजाओं के प्रीतिपात्र हो गये, उनसे उनका विशेष सम्बन्ध स्थापित हो गया। उनका अनुवाद सभी को पसंद आया और उन्हें उसके लिये पांच सौ रुपये पुरस्कार मिले।

रत्नावली नाटक के अभिनय में बंगाल के गवर्नर जनरल सर फ्रेडरिक ह्यालिड, हाईकोर्ट के जज, कमिश्नर, मजिस्ट्रेट आदि बहुत से उच्चपदस्थ कर्मचारी गण उपस्थित हुए थे। यह नाटक बहुत ही अच्छा खेला गया था। बेलगाछिया नाट्यशाला ने लोगों में नाटक के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। उसी समय से बंगाल में नाटकों और उसके साथ ही साथ उसकी सहायता से साहित्य की उन्नति आरम्भ हुई। बेलगाछिया नाट्यशाला ने ही बंगाल में नाटक के अभिनय का वास्तविक प्रचार किया है उक्त नाट्यशाला पर पहिले संस्कृतज्ञ लोगों का ही आधिपत्य था। उनमें कुछ लोग यह समझते थे कि अन्य विषयों में यथेष्ठ उन्नत होने पर भी अँगरेजी शिक्षित लोग नाटक-रचना में संस्कृतज्ञ लोगों की बराबरी न कर सकेंगे। लेकिन नाट्यशाला में मधुसूदनदत्त के प्रवेश करते ही लोगों का भ्रम मिट गया। रत्नावली नाटक अभिनय के साथ ही साथ उस समय के बड़े बड़े

अंधकारियों और पत्रों ने उसके अँगरेजी अनुवाद की भी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की । जिस हरकरा पत्र ने मधुसुदन के 'कैपटिव लेडी' की तीव्र आलोचना की थी, उसके सम्पादक श्रीराम चट्टोपाध्याय महाशय ने भी लिखा,—"ऐसी विशुद्ध अँगरेजी रचना हमने कभी नहीं देखी । हम लोग यह नहीं जानते थे कि किसी बंगाली की लेखनी से ऐसा ग्रन्थ लिखा जा सकता है," आदि । इस रचना से मधुसूदन का यथेष्ठ समादर हुआ, उन्हें अपने उद्देश्य की ओर जाने का रास्ता मिल गया और इसके बाद उन्हें फिर भटकना नहीं पड़ा ।

शर्मिष्ठा और पद्मावती की रचना ।

(१८५८ ई० से १८५६ ई० तक)

अभी तक मधुसूदन का झुकाव अँगरेजी रचना की ओर ही था । एक दिन रत्नावली नाटक का अभिनयाभ्यास (Rehearsal) देखते समय मधुसूदन ने गौरबाबू से कहा—"देखो कितने दुःख की बात है कि राजा लोग एक तुच्छ नाटक के लिये इतना रुपया खर्च कर रहे हैं ।" गौरदास बाबू ने मधुसूदन की बात सुनकर कहा—हम लोग जानते हैं कि रत्नावली कोई अच्छा नाटक नहीं है, लेकिन इसका कोई उपाय भी तो नहीं है, बँगला में अच्छे नाटक कहाँ हैं ? यदि अच्छे नाटक मिलते तो हम लोग इसे न-खेलते ।' मधुसूदन ने कहा—'अच्छे नाटक ! अच्छा मैं लिखूँगा ।'

गौरदास बाबू अच्छी तरह जानते थे कि मधुसूदन बँगला एकदम भूल गये हैं, शुद्ध शुद्ध लिख भी नहीं सकते । लेकिन उन्होंने यह भाव छिपा कर कहा—'अच्छा ! यदि इच्छा हो तो कोशिश करके देखो ।' इस बातचीत के दूसरे ही दिन मधुसूदन

बाज़ार से कुछ बंगला और संस्कृत पुस्तकें ले आये और उन्हें पढ़कर उन्होंने कुछ दिन बाद ही शर्मिष्ठा की लिखित कापी का कुछ अंश बाबू गौरदास को पढ़ने के लिये दिया। शर्मिष्ठा की रचना देखकर गौरबाबू को बड़ा आश्चर्य हुआ। मधुसूदन की बँगला-रचना का समाचार जानकर महाराजा यतीन्द्रमोहन, राजा ईश्वरचन्द्र और राजा प्रतापचन्द्र आदि सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। दो ही तीन सप्ताह में मधुसूदन ने शर्मिष्ठा का शेषांश भी लिख डाला। राजाओं ने अपने अँगरेजी शिक्षित और संस्कृतज्ञ दोनों प्रकार के मित्रों से शर्मिष्ठा के गुण-दोष पूछे। उन लोगों ने उस समय के सर्व-प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ प्रेमचांद 'तर्कवागीश' को गुण-दोष देखने के लिये शर्मिष्ठा की कापी दी। मधुसूदन ने शर्मिष्ठा में कुछ अँगरेजी ढंग को स्थान दिया था, नटी और सूत्रधार का अंश तथा अंक-गर्भांक आदि का भेद उड़ा दिया था। व्याकरण और अलंकार का ज्ञान न होने के कारण उसमें बहुत से व्याकरण और अलंकार-विरुद्ध दोष भी आ गये थे। अतएव तर्कवागीश महाशय ने कहा कि संस्कृत-नियमानुसार तो यह नाटक हो ही नहीं सकता। लेकिन नवीन शिक्षित लोग व्याकरण और अलंकार के गुण दोषों पर ध्यान नहीं देते थे। वे शर्मिष्ठा की सुमधुर भाषा चित्ता-कर्षक विषय और स्वाभाविक चरित्र-चित्रण को ही देखकर मुग्ध हो गये थे। नाटक की प्राचीन और नवीन प्रणाली पर उन लोगों ने ध्यान देना उचित नहीं समझा। इस नव शिक्षित पक्ष के मुखिया महाराजा यतीन्द्रमोहन और राजा ईश्वरचन्द्र ने उसे अपने खर्च से छपवाया और मधुसूदनदत्त को उसके लिये यथेष्ठ पुरस्कार दिया। यद्यपि शर्मिष्ठा में अनेक दोष हैं और वह वर्तमान बँगला नाटकों के सामने अच्छा नहीं कहा

ज़ा सकता, लेकिन उस समय की दृष्टि से शर्मिष्ठा एक बहुत अच्छा नाटक था। रत्नावली की भाँति यह नाटक भी बड़े समारोह के साथ खेला गया था, मधुसुदन ने अपने इस नाटक का स्वयं ही अँगरेजी अनुवाद किया था जो कि छपवाकर नाटक खेलते समय बांटा गया था। मधुसूदन की इस रचना की भी यथेष्ठ प्रशंसा हुई। अब तक लोग उन्हें अँगरेजी का ही सुलेखक और कवि समझते थे, शर्मिष्ठा को रचना से उन्हें बँगला का भी पंडित समझने लगे। इन रचनाओं में मधुसूदन को यथेष्ठ पुरस्कार मिला, वे ऋणभार से मुक्त होकर निश्चिन्त हो गये और शान्तचित्त होकर ग्रन्थ-रचना में लग गये।

मधुसूदनदत्त ने तीन वर्ष के अंदर चार पुस्तकें लिखीं। उनकी पहिली पुस्तक शर्ष्मिठा १८५८ ई० में लिखी गयी थी। १८६० ई० के समाप्त होते होते उन्होंने "एकेइ कि बोले सभ्यता" (क्या इसी को सभ्यता कहते हैं) और "बूड़ शालिकेर घाड़े रों" (बुड्ढे शालिक के गर्दन का रों) नाम के दो प्रहसन तथा पद्मावती नाटक और तिलोत्तमा सम्भव काव्य एक के बाद एक, लिखे थे। उक्त दोनों प्रहसनों में "एकेइ कि बोले सभ्यता" उस समय के उन नवीन शिक्षित लोगों पर लिखा गया था; जो नवीन शिक्षा पाकर मद्य मासांदि अखाद्य वस्तुएँ खाते थे, प्राचीन सभ्यता को एकदम बुरा समझते थे और उसकी मज़ाक उड़ाते थे। इसी तरह "बूड़ शालिकेर घाड़े रों" प्राचीन परिपाटी के उन अन्ध भक्तों पर लिखा गया था जो नवीन सभ्यता और नवीन शिक्षित लोगों को तो बुरा कहते थे लेकिन स्वयं छिपे छिपे व्यभिचार करते थे, दूसरों की सम्पत्ति हज़म कर जाते थे, आदि। ये दोनों प्रहसन राजा प्रतापचन्द्र और ईश्वरचन्द्र के अनुरोध से बेलगाछिया नाट्यशाला में खेलने के लिये लिखे गये थे। ये दोनों

प्रहसन बहुत ही अच्छे हैं, इनकी कोटि के प्रहसन बँगला में बहुत ही कम हैं।* पद्मावती नाटक ग्रीक पुराण की छाया लेकर लिखा गया है, इस नाटक की भाषा और भाव आदि शर्मिष्ठा से परिमार्जित हैं, घटना-वैचित्र्य भी शर्मिष्ठा से अच्छा है, लेकिन इसका चरित्र-चित्रण शर्मिष्ठा से अच्छा नहीं है। 'तिलोत्तमा सम्भव काव्य' अतुकान्त छंदों में लिखा गया है। उस समय बँगला में कोई भी अतुकान्त काव्य नहीं था जिस समय मधुसूदनदत्त शर्मिष्ठा नाटक लिख रहे थे उस समय बात ही बात में उनसे और महाराजा यतीन्द्र मोहन से नाटक और अतुकान्त कविता के सम्बन्ध में बात चीत हुई। मधुसूदन ने कहा कि जब तक अमित्राक्षर छन्द का प्रचार न होगा तब तक बँगला नाटकों की उन्नति की विशेष आशा नहीं है। यह सुनकर राजा साहब ने कहा, बँगला भाषा की जैसी अवस्था है उस अवस्था में उसमें अतुकान्त कविता हो सकने की बहुत कम आशा है। कुछ देर इस प्रकार वादविवाद होने पर मधुसूदन-दत्त ने कहा, हमारी भाषा में अतुकान्त कविता हो सकती है या नहीं, मैं आप को इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाने को तैयार हूँ। यदि मैं स्वयं अतुकान्त काव्य लिखकर आपको दिखाऊँ तो आप क्या कीजिएगा? और कोई होता तो उसकी बड़ी मजाक उड़ाता; लेकिन मधुसूदन की अद्भुद् शक्ति से कोई अपरिचित नहीं था राजा साहब ने कहा; ऐसा होने से मैं हार मानूँगा और पुस्तक की छपाई का सारा दाम दूँगा। इस छोटी सी घटना से बँगला में एक नवीन छंद परिवर्तित हो गया जिससे बँगला का कविता-स्रोत एक नवीन रास्ते से प्रवाहित होने लगा।

उपर्युक्त घटना के कुछ दिन बाद मधुसूदन ने तिलोत्तमा

---

* इन दोनों प्रहसनों का हिन्दी अनुवाद हो चुका है।

सम्भव काव्य लिख डाला। महाराज यतीन्द्रमोहन बाबू राजनारायण और डाक्टर राजेन्द्रलालमित्र आदि विद्वानों ने इस पुस्तक की रचना पर मधुसूदनदत्त की बड़ी सराहना की। मधुसूदनदत्त ने इस पुस्तक को मातृभाषा और काव्य प्रेमी महाराजा यतीन्द्रमोहन को ही समर्पण किया उस उत्सर्ग पत्र में उन्होंने लिखा था—

"जिस छन्द में यह काव्य रचा गया है, उसके विषय में मेरे लिये कोई बात कहनी ही व्यर्थ है, क्योंकि इस प्रकार के परीक्षा रूपी वृक्ष का फल तुरत नहीं फलता। लेकिन मुझे विलक्षण विश्वास सा हो रहा है, कि ऐसा कोई समय अवश्य आवेगा, जब कि इस देश के साधारण मनुष्य लोग, भगवती वाणी के चरणों की तुकान्त रूपी बेड़ी को टूटा देखकर प्रसन्न होंगे। लेकिन सम्भवतः उस शुभ काल में इस काव्य का रचयिता ऐसी घोर निद्रा में मग्न रहेगा कि धिक्कार या धन्यवाद कुछ भी उसके कर्णाकुहर में न प्रवेश कर सकेंगे।"

मधुसूदन की यह भविष्य वाणी अक्षरशः सत्य हुई है। यद्यपि उस समय के बहुत से आलोचकों ने बँगला-कविता में इतना बड़ा परिवर्तन देखकर मधुसूदन के इस कार्य की तीव्र आलोचना की थी लेकिन मधुसूदनदत्त तथा महाराजा यतीन्द्रमोहन आदि विद्वानों को विश्वास हो गया था कि इस प्रयत्न का भविष्य में क्या परिणाम होगा।

मधुसूदन ने तिलोत्तमासम्भव काव्य सुन्द और उपसुन्द की घटना को लेकर लिखा है लेकिन पौराणिक घटना के बीच बीच में इन्होंने अपनी कल्पना या अन्य काव्यों की छाया मिला दी है इसके बहुत से वर्णन बड़े विचित्र हैं इसकी भाषा पिछले ग्रन्थों से परिष्कृत और भाव गम्भीर हैं। लेकिन मधुसूदन ने एक नवीन छन्द

में ग्रन्थ-रचना की थी, उस समय तक भी भाषा पर पूर्ण अधिकार नहीं हुआ था । इसलिये तिलोत्तमा की भाषा कहीं कहीं पर कर्कश हो गयी है । मधुसूदन ने अलंकारों का भी खूब प्रयोग किया है, परन्तु अलंकारों का व्यवहार न जानने के कारण उन्होंने कहीं कहीं पर इतने अलंकारों का प्रयोग कर दिया है कि वह स्थल बड़ा ही जटिल हो गया हैं। मधुसूदन के बनाये हुए मेघनादवधादि से समता करने पर तिलोत्तमा में अधिक दोष मिलेंगे। मधुसूदन अपनी इस त्रुटि को जानते थे, इसलिये यूरोप में रहते समय उन्होंने तिलोत्तमा को नये सिरे से लिखना आरम्भ किया था लेकिन दुर्भाग्यवश वे उसे पूरा नहीं कर सके। तिलोत्तमासम्भव की रचना के बाद मधुसूदन की रचना का प्रारम्भिक काल समाप्त हो जाता है। इसके बाद उन्होंने जो पुस्तकें लिखी हैं वे पिछली पुस्तकों से उच्च श्रेणी की हैं और उनकी गणना उच्च श्रेणी के काव्यों में है।

पूर्ण प्रतिभा का विकाश।

मेघनादवधादि की रचना।

(१८६१ई०)

मेघनादवध

मेघनादवध की रचना से मधुसूदन की पूर्ण प्रतिभा का विकाश प्रारम्भ होता है। इस समय उन्होंने मेघनादवध, व्रजाङ्गना, कृष्णाकुमारी, और वीराङ्गना नामक चार ग्रन्थों की रचना की। इनमें कृष्णाकुमारी नाटक और शेष तीनों काव्य-ग्रन्थ हैं। प्रथम तीन पुस्तकों का आरम्भ उन्होंने एक साथ ही किया था और प्रायः एक साथ

ही समाप्त हुई थीं। मधुसूदन की कविता का पूर्ण विकाश उनके पाश्चात्य भावों के पूर्ण विकाश का भी काल था।

यद्यपि माइकेल ने मेघनादवध का कथा भाग बाल्मीकि-रामायण से ही लिया है किन्तु उसमें अन्य पाश्चात्य कवियों के काव्यों—विशेषतः होमर के एलियड—का विचित्र संमिश्रण कर डाला है, मधुसूदन ने कथा भाग को विचित्र बनाने तथा रोचक करने के लिये ही ऐसा किया है। उन्होंने राम लक्ष्मण आदि को अवतार, और रावण मेघनाद आदि को नरमांसाहारी कुनीतिपरायण राक्षस रूप में नहीं वर्णन किया है। मधुसूदन ने राम लक्ष्मण आदि को साधारण मनुष्य की भाँति सुख-दुख का भागी बतलाया है साधारण मनुष्यों से उनसे इतना ही अंतर दिखलाया है कि वे अपने तपोबल से देवताओं को प्रगट कर सकते हैं और निजकृत कर्मों का अंश भी उन्हें ग्रहण करा सकते हैं। उन्होंने हनुमान जाम्बवन्तादि का वर्णन बन्दर, भालू रूप में नहीं किया है, उन्हें मनुष्य ही माना है। रावणादि राक्षसों के आचार व्यवहार में और आर्यों के आचार-व्यवहार में कोई अन्तर नहीं दिखलाया है। आर्य स्त्री-पुरुषों की भाँति वे भी यज्ञ, देव-पूजनादि कर्म करते हैं। ऐसा करने में मधुसूदन ने आर्यों की अपेक्षा राक्षस-वंश के ही प्रति विशेष सहानुभूति दिखलायी है, उनके वीरत्व और गौरव आदि को बहुत बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है अधिकांश स्थलों पर राम लक्ष्मणादि के आदर्श को गिरा दिया है। उन्होंने लक्ष्मण से मेघनाद का वध ऐसी अनुचित रीति से कराया है, जिसे पढ़कर हिन्दू मात्र को घृणा होती है। मेघनाद मायादेवी के मंदिर में बैठा हुआ मायादेवी का ध्यान कर रहा था; लक्ष्मणजी विभीषणादि के साथ मायादेवी के मंदिर में गये; मायादेवी

लक्ष्मणजी पर प्रसन्न थीं, अतएव मंदिर का फाटक स्वयं ही खुल गया। इससे मेघनाद को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके पैरों की आहट सुनकर उसने समझा कि मायादेवी आयी हैं, इस भ्रम से से वह आँख खोलकर लक्ष्मणजी के पैरों पर गिरने जा ही रहा था कि लक्ष्मणजी ने उसे धक्का देने के लिये अपनी लटकती हुई तलवार उठाई, तब मेघनाद सावधान हुआ। उसने लक्ष्मणजी से कहा कि ठहरो मैं अस्त्रादि धारण करके तुमसे लड़ता हूँ लेकिन लक्ष्मणजी ने उसे अस्त्र ग्रहण करने का अवसर नहीं दिया, बस निहत्थे को ही तलवार से मार डाला।

अवलोकनार्थ मैंने ऊपर एक उदाहरण दिया है। मधुसूदन के मेघनादबध में इस प्रकार के अनेक अनौचित्य हैं। राक्षस लोगों के प्रति विशेष सहानुभूति रहने के कारण ही मधुसूदन से ऐसा निकृष्ट कार्य हो गया है। उन्होंने राक्षस वंश के पात्रों का जैसा वर्णन किया है वैसा आर्य लोगो का नहीं कर सके। राक्षस वंश के प्रति पाठकों की सहानुभूति उत्पन्न करना ही मेघनादबध-रचयिता का प्रधान उद्देश्य था, इसीलिये उन्होंने राक्षस वंश के पारिवारिक जीवन का बहुत अच्छा चरित्र चित्रण किया है। यद्यपि उन्होंने राक्षसराज रावण को काम के वशीभूत होकर सीता हरणकारी कहा है, तौ भी उसका वर्णन प्रेमी पिता, गौरव-शाली सम्राट, अतुलित बलशाली, परम प्रतापी और भावुक भक्त के रूप में किया है। मधुसूदन ने अपने ग्रन्थ के नायक मेघ-नाद को स्वदेश-प्रेमी, वीर, पितृ-मातृ भक्त पुत्र; स्नेही भ्राता, भक्त उपासक और निष्कपट प्रेमी रूप में चित्रित किया है। मेघ-नाद का सबसे बड़ा गुण निर्भीकता बतलाया है और इसे बहुत अच्छी तरह दिखलाया है। मधुसूदन ने ग्रन्थ की नायिका मेघ-नाद की धर्मपत्नी प्रमीला का चित्र खींचने में सचमुच कमाल

कर दिया है । प्रमीला के पति-प्रेम, निर्भीकतादि गुणों को बड़ी खूबी के साथ दिखलाया है । पति के साथ चिता पर बैठकर प्रमीला के सती होने का भी बहुत करुणापूर्ण वर्णन है । मेघनाद-बध में प्रमीला का चरित्र ऐसा अच्छा चित्रित किया गया है कि वह पाठक को बरबश अपनी ओर खींच लेता है ।

मधुसूदन ने सीता की पतिभक्ति, उदारता, सहृदयता और पर-दुखकातरता आदि गुणों का बहुत अच्छा वर्णन किया है। प्राकृतिक दृश्यों, लंका, रावण की राजसभा आदि का भी बहुत उत्कृष्ट वर्णन किया है जो कि पढ़ने के ही योग्य है । पाठकों के मनोरंजनार्थ मैं मेघनादबध का कुछ अंश नीचे उद्धृत करता हूं;:—
अशोकवाटिका में सरमा राक्षसी के पूर्वकथा पूछने पर सीता-जी कहती हैं:—

यथा गोमुखीर मुख हइते सुस्वने
झरे पूत वारि-धारा, कहिला जानकी,
मधुर-भाषिणी सती, आदरे सम्भाषि
सरमारे;—हितैषिणी सीतार परमा
तुमि, सखी पूर्वकथा सुनिवार यदि
इच्छा तव, कहि आमि सुन मन दिया ।
"छिनु मोरा, सुलोचन, गोदावरी-तीरे,
कपोत-कपोती यथा उच्च वृक्ष-चूड़े
बाँधि नीड़, थाके सुखे; छिनु घोर वने,
नाम पंचवटी; मर्त्ये सुर-वन सम ।
सदा करितेन सेवा लक्ष्मण सुमति ।
दंडक भांडार जार, भावि देख मने,
किसेर अभाव तार ? योगातेन आनि
नित्य फल मूल-वीर सौमित्रि; मृगया

करितेन कभु प्रभुः किन्तु जीव-नाशे
सतत विरत, सखि, राघवेन्द्र बली,—
दयार सागर नाथ, विदित जगते !
"भूलिनु पूर्व्वेर सुख ! राजारनंदिनी,
रघुकुलवधु आमि; किन्तु ए कानने,
पाइनु, सरमा सइ, परम पिरीति !
कुटीरेर चारिदिके कत जे फूटितो
फूलकुल नित्य नित्य, कहिब केमने ?
पंचवटी-वन-चर मधु निरवधि
जागात प्रभाते मोरे कुहरि सुस्वरे
पिकराज ! कोन राणी, कह शशिमुखि !
हेन चित्त-विनोदन वैतालिक-गीते
खोले आँखि ? शिखी सह शिखिनी सुखिनी
नाचित दुयारे मोर नर्त्तक-नर्त्तकी
ए दोंहार सम, रामा आछे कि जगते ?
अतिथि आसितो नित्य करभ, करभी,
मृग शिशु, विहङ्गम, स्वर्ण-अङ्ग केह,
केह शुभ्र, केह काल, केह वा चित्रित,
यथा वासवेर धनुः घन-वर-शिरे;
अहिंसक जीव जत । सेवितास सबे
समादरे, पालितास परम यतने,
मरुभूमे स्रोतस्वती तृषातुरे यथा,
आपनि सुजलवती वारिद-प्रसादे !
सरसी आरसी मोर ! तूलि कुवलये,
(अतुल रतन सम) परितास केशे;
साजि तास ल-साजे; हासितेन प्रभु,

वनदेवी वलि मोरे संम्भाषि कौतुके।
हाय, सखि, आर कि लो पाव प्राणनाथे ?
आर कि ए पोड़ा आँखि ए छार जनमे
देखिवे से पा-दुखानि—आशार सरसे
राजीव, नयन-मणि ? हे दारुण बिधि !
कि पापे पापी ए दासी तोमार समीपे ?"
एतेक कहिया देवी काँदिला नीरवे।
काँदिला सरमा सती तिति-अश्रु-नीरे।

(हिन्दी-अनुवाद)

ज्यों गोमुखि मुख से कलकल कर बहती है पावन जलधार,
त्यों सरमा के उत्तर में यों, कहा जानकी ने इक वार।
"सीता की परमा हितैषिणी सखि सरमे ! निश्चय आधार,
पूर्व-कथा-श्रवणाभिलाष यदि है—कहती हूँ सुनो विचार ॥१॥
ज्यों कपोत-दंपति विशाल विटपों के शिर पर रच निज नीड़,
करते हैं निवास बीहड़ बन में, निर्भय होकर निष्पीड़।
त्यों थे बसे हुए सुलोचने ! हम गोदावरि-तीर ललाम,
मर्त्यलोक में सुरबन स्थल, पंचवटी था उसका नाम ॥२॥
सदा सत्य-सेवा करते थे सुमति लक्ष्मण शुभ व्यवहार,
सोचो, क्या अभाव उसको है जिसके दंडक सा भंडार ?
कान्तर से नित कंद-मूल-फल ले आते थे लक्ष्मण वीर,
मृगया कभी कभी करते थे प्रभुवर राघवेन्द्र ध्रुव धीर ॥३॥
पर हिंसा से सदा विरत रहते थे सखि ! सुवीर रघुनाथ,
विदित जगत में हैं करुणा के पारावार नाथ के हाथ।
राजपुत्रि, रघुवंशबधू हूँ, पर बन में पा प्रभु की प्रीति,
सरमे ! भूली थी मैं उस दम पूर्व सुखों की वह शुचि गीति ॥४॥
कल कुटीर की चतुर्दिशा में, नित फूलें कितने ही फूल।

कैसे कहूँ!—कुञ्ज में निरवधि था वसंत ही भूला भूल।
पंचमस्वरी राग से कोकिल कूक कूक कर प्रातःकाल।
किस वाणी से कहूँ? चन्द्रमुखि! हमें जगाता था तत्काल ॥५॥
सजनी! भला कौन है रानी? जो विभोर-वैतालिक-गान—
चित्त-मोदकारी सुनसुनकर खोले आँखों का अपिधान?
सुख से मोर-मोरनी जोड़ी नाचे मम कुटीर के द्वार।
ऐसे नर्त्तक और नर्त्तकी रखता और कहाँ संसार? ॥६॥
आते अतिथि हस्तिनी हाथी नित्य विहङ्गम हरिण-किशोर।
स्वर्ण-सितासित, वर्ण अनूपम ज्यों घन में हरि-धनुष-हिलोर।
इन अहिंस्र जीवों का लालन पालन करती थी सोपाय।
उन्हें महादर से यों रखती, कर नाता उनसे संवाय ॥७॥
ज्यों वारिद-मंडल से पाकर सुन्दर जीवन का उपहार।
तृषातुरों का जीवन रखती मरु-भू में स्रोतस्वति-धार।
सरसी मम आरसी—कमल-कुल रत्नों से सँवारती केश।
सजती थी सुमनों के गहने हो जाता था सुन्दर वेष ॥८॥
हसते प्रभु कहते वनदेवी, मुझे बुलाते थे, कर प्यार।
अये! सखी!! क्या मुझे पुनः, वे नहीं मिलेंगे प्राणाधार?
ये पीड़ित आँखें जीवन में चरण न वे देखेंगी? हन्त!!
जो राजीव आश-सरसी के, नयन पुटों के मणि रुचिवंत ॥९॥
दारुण दैव! नज़र में तेरी पापिनि कैसे दासी दीन?
यों कह, रोने लगीं शान्ति से देवि भाव में हो तल्लीन।
करुणा से सरमा भी रोयी—नीरज नयनों से भर नीर।
क्षण भर में ही अश्रु-धार से भींगा उसका सौम्य-शरीर ॥१०॥*

मेघनादवध करुणरस प्रधान काव्य है, इसका आरम्भ

---

* श्रीयुत विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'मुकुन्द' महोदय द्वारा अनूदित अप्रकाशित 'मेघनादवध महाकाव्य' से।

वीरबाहु के मरण काल से होता है, मध्य भाग चित्राङ्गदा, रावण और मंदोदरी आदि के शोक से भरा हुआ है और प्रमीला के सती होने पर समाप्त होता है इस प्रकार मेघनादवध को वीर रस प्रधान न कह कर करुण रस प्रधान काव्य कहना ही उपयुक्त है, इसमें वीर रस के स्थल बहुत कम हैं। मेघनाद की भाषा ओजपूर्ण है। इसकी भाषा ने बंगला में एक नवीन युग उपस्थित कर दिया था उसी का अनुसरण करके बँगला वर्तमान दशा को प्राप्त हुई है।

यद्यपि मेघनादवध में राक्षस वंश के प्रति आवश्यकता से अधिक सहानुभूति और राम-लक्ष्मणादि की आदर्श-हीनता का बड़ा भारी दोष विद्यमान है, लेकिन पापी के प्रति सहानुभूति होते हुए भी उसमें पाप के प्रति कहीं भी सहानुभूति नहीं प्रगट की गयी है। पुस्तक पढ़ने से पाठक का मन पापाचार की ओर नहीं झुकता। मेघनादवध में यह अच्छी तरह दिखलाया गया है कि धन, मान, अतुल बल यहाँ तक कि भक्ति भी रहते हुए पापवृत्ति का कैसा भयङ्कर परिणाम होता है।

मधुसूदन ईसाई हो गये थे, ईसाई धर्म तथा सभ्यता से भलीभाँति प्रभावित होने के कारण उनकी पुस्तकों में कुछ बेढंगापन आना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, ऐसा होना तो स्वाभाविक ही है। विधर्मी होकर भी उन्होंने अपनी मातृभाषा की जैसी सेवा की है—अपनी सेवा-द्वारा मातृभाषा में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है—उसकी प्रशंसा प्रत्येक व्यक्ति ने की है। उनके काव्यों का यथोचित समादर हुआ है। उनकी अपूर्व प्रतिभा देखकर श्रीयुत् ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महात्मा भी जो पहिले मधुसूदन से सहमत नहीं थे मेघनादवध की रचना देखकर सहमत हो गये थे।

मेघनादवध मधुसूदन के पाश्चात्य प्रभाव का फल है और ब्रजाङ्गना उनके जातीय भाव के बीजारोपण का परिणाम। यद्यपि मधुसूदन ने भारतचन्द्रादि कवियों की प्राचीन कविता के प्रधान रस शृङ्गार को छोड़ दिया था लेकिन इस पुस्तक में उनके हृदय का अन्तर्हित शृंगार-प्रेम प्रगट हो गया है। इसमें श्रीकृष्ण जी के मथुरा चले जाने के बाद वियोगिनी राधिका की वियोगावस्था का वर्णन है। राधा और कृष्ण के अपूर्व प्रेम का वर्णन करना परम प्रेमी वैष्णव कवियों का ही काम था। मधुसूदन में अपूर्व काव्य-प्रतिभा होते हुए भी राधिका और कृष्ण के प्रति अपूर्व प्रेम और भक्ति नहीं थी जो वैष्णव कवियों का विशेष गुण था। इसलिये यद्यपि मधुसूदन ने राधिका और कृष्ण के विलाप का बहुत अच्छा वर्णन किया है—उसके पढ़ने से पाठकों के सामने राधिका की वियोगिनी मूर्त्ति खड़ी हो जाती है, चित्त आनन्दित हो जाता है—लेकिन वह मर्मस्थल तक नहीं पहुँचती। मधुसुदन की सब पुस्तकों में ब्रजाङ्गना की भाषा सबसे मधुर और संस्कृत भावों से भरी है। मैं यहाँ पर उसमें से कुछ अंश नीचे उद्धृत करता हूँ।

ब्रजागना काव्य
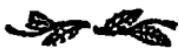
विरहणी राधिका मोरनी को देखकर कहती हैं

मोरनी।

तरुशाखा-उपरे, शिखिनि!
केन लो वसिया तुइ विरस-वदने?
ना हेरिया श्यामचाँदे, तोरो कि पराण काँदे
तुइओ कि दुःखिनी!

आहा ! के ना भालवासे राधिकारमणे ?
कार ना जुड़ाय आँखि शशि, विहङ्गिनि ? १।
आय, पाखि, आमरा दुजने
गला धराधरि करि भावि लो नीरवे ;
नवीन नीरदे प्राण तुइ करेछिल दान,—
से कि तोर हवे ?
आर कि पाइवे राधा राधिका-रञ्जने ?
तुइ भाव घने, धनि, आमि श्रीमाधवे ॥२॥
कि शोभा धरये जलधर
गभीर गरजि जवे उड़े से गगने,
स्वर्ण-वर्ण शक्र-धनुः रतने खचित तनु;
चूड़ा शिरोपरे;
विजली कनक-दाम परिया जतने,
मुकुलित लता यथा परे तरुवर ॥३॥
किन्तु भेवे देख, लो कामिनि,
मम श्यामरूप अनुपम त्रिभुवने ।
हाय, ओ रूप-माधुरी, कार मन नाहि चुरि
करे, रे शिखिनि ?
जाँर आँखि देखियाछे राधिकामोहने,
सेइ जाने केन राधा कुलकलङ्किनी ॥४॥
तरुशाखा-उपरे, शिखिनि,
केन लो वसिया तुइ विरस वदने ?
ना हेरिया श्यामचाँदे, तोरो कि पराण काँदे,
तुइओ कि दुःखिनी ?
आहा, के ना भालवासे श्रीमधुसूदने ?
मधु कहे, जा कहिले सत्य, विनोदिनी ! ॥५॥

(कविवर मधुपकृत हिन्दी-अनुवाद)

शिखिनि विरस वदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे?
तेरे प्राण न देख श्याम को रोते हैं क्या मुझ जैसे?
तू भी है दुखिया क्या, आहा! उन पर कौन नहीं मरता?-
किसे नहीं शशि शीतल करता, किसका हृदय नहीं हरता॥१॥
आओ सखि! हम तुम दोनों ही मौन परस्पर कंठ धरें;
तुम घन का मैं मनमोहन का, निज निज धन का ध्यान करें।
क्या तेरा होता वह यद्यपि, देवी है तू मन घन को,
पावेगी अब और हाय! क्या राधा राधा-रञ्जन को?
गर्जन करता हुआ गगन में जलधर क्या ही छवि पाता,
स्वर्ण शक्र धनु रत्नखचित तनु है किरीट-सा बन जाता,
विद्युद्दाम पहन कर विधि से शोभित होता है ऐसे—
मुकुलित लता गले लिपटा कर अति सुन्दर तरुवर जैसे॥
किन्तु शिखिनि! मम श्याम रूप-सम भला कहाँ छवि भाती है,
अहो धन्य वह रूप-माधुरी किसका चित न चुराती है?
देखा है जिसकी आखों ने मोहन-रूप विना बाधा—
वही जान सकता है क्यों कर कुलकलंकिनी है राधा!
शिखिनि विरस वदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे?
तेरे प्राण न देख श्याम को रोते हैं क्या मुझ जैसे?
तू भी है दुखिया क्या, आहा! उन पर कौन नहीं मरता?
कवि मधु है इस सत्य कथन का मन से अनुमोदन करता॥

कृष्णाकुमारी बँगला का पहिला ही वियोगात्मक नाटक है। संस्कृत-साहित्य के नियमानुसार उस समय लोग वियोगात्मक नाटक लिखना उचित नहीं समझते थे। लेकिन मधुसूदन ने इस परिपाटी को भंग कर, तीव्रालोचना की परवाह न करके पाश्चात्य साहित्य का अनुकरण

कृष्णकुमारी

करके यह नाटक लिखा था। यह नाटक महाराणा प्रतापसिंह के वंशज उदयपुर के राजा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी का विषादमय जीवन-वृत्तान्त लेकर लिखा गया है। मधुसूदन ने राजपरिवार की दीन-हीन-शोचनीय दशा का चित्र खींचते हुए लिखा है कि उस समय भारत के राज्यों की बड़ी भीषण दशा थी; चारों ओर लूट-मार मच रही थी; होल्कर, सिन्धिया, पठान, डाकू अमीर खां आदि सबों की नज़रें उदयपुर की हरी भरी शस्यश्यामला भूमि की तरफ लगी हुई थीं। लुटेरों को बारम्बार कर देते देते उदयपुर राज्य की बड़ी ही शोचनीय स्थिति हो गयी थी। ऐसी स्थिति में कृष्णाकुमारी के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर जयपुर के राजा लम्पट प्रकृतिवाले जगतसिंह और मरुदेश के राजा मानसिंह ने कृष्णाकुमारी से पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रगट की; और दोनों ने कहा कि यदि मानसिंह अपनी पुत्री कृष्णाकुमारी का पाणिग्रहण मेरे साथ न करेंगे, तो मैं उदयपुर को ध्वंश कर डालूंगा। यह सुनकर राजा मानसिंह ने अपने मंत्रियों की अनुमति से कृष्णाकुमारी को विष देकर मारने का निश्चय किया। यही कृष्णाकुमारी का संक्षिप्त मूल कथानक है। लेकिन मधुसूदन ने इसमें थोड़ा सा परिवर्तन करके कृष्णा-कुमारी का तलवार द्वारा वध करवाया है। उस समय की भारत की शोचनीय दशा, मानसिंह की कृष्णाकुमारी को मारने की अनुमति, कृष्णकुमारी की मृत्यु आदि का वर्णन पढ़ते पढ़ते पाठकों की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है, रोकने से भी नहीं रुकती। मधुसूदन के नाटकों में कृष्णाकुमारी सर्वोत्कृष्ट है। लेकिन मधुसूदन के पद्य-काव्यों की जितनी ख्याति है उतनी नाटकों की नहीं है।

उपर्युक्त तीनों काव्यों को समाप्त करने के बाद मधुसूदन ने

१८६२ ई० में वीराङ्गना काव्य लिखा। यह पुस्तक मधुसूदन के प्रतिभा-विकाश की अन्तिम और चरम सीमा है

वीरांगना काव्य

इसके बाद उनकी प्रतिभा की अवनति आरम्भ हुई है। इसकी भाषा मधुसूदन के सब ग्रन्थों से परिमार्जित है; बंगला समालोचकों के मत से श्रीहेमचन्द्र, श्रीनवीनचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि जिन कवियों ने मधुसूदन के बाद अतुकान्त कविता की है, उनकी भाषा भी मधुसूदन की भाषा से अधिक उन्नत नहीं हुई है। मधुसूदन के तिलोत्तमासम्भव काव्य में शब्दों की जटिलता, क्लिष्टता और यतिभंग आदि जो दोष आ गये हैं वे दोष वीराङ्गना में नहीं हैं।

यद्यपि वीराङ्गना नाम से किसी युद्ध-प्रिय वीर नायिका का ही बोध होता है लेकिन मधुसूदन ने वीराङ्गना शब्द का व्यवहार अपनी सभी नायिकाओं के सम्बन्ध में किया है। यह काव्य दुष्यन्त प्रति शकुन्तला, चन्द्र प्रति तारा, कृष्ण प्रति रुक्मिणी, दशरथ प्रति कैकेयी, लक्ष्मण प्रति सूर्पणखा, अर्जुन प्रति द्रौपदी, दुर्योधन प्रति भानुमती, जयद्रथ प्रति दुःशला; शान्तनु प्रति गंगा, पुरुरवा प्रति उर्वशी और नीलध्वज प्रति जना इन ग्यारह सर्गों में विभक्त है। प्रत्येक नायिका ने एक एक सर्ग में अपने प्रेमियों के प्रति एक पत्र लिखा है। उनमें १ तारा २ रुक्मिणी ३ सूर्पनखा और ४ उर्वशी की प्रेम पत्रिकाएँ, ५ गंगा की प्रत्याख्यान पत्रिका, ६ शकुन्तला ७ द्रौपदी, ८ भानुमती और ९ दुःशला की स्वामी की अमङ्गल चिन्ता से व्याकुल स्मरण पत्रिका, १० कैकेयी और ११ जना की (स्वामी के अनुचित व्यवहार से पीड़ित) अनुराग पत्रिकाएँ हैं। यद्यपि इन नायिकाओं के बहुत से गुण एक दूसरे के समान से हैं; लेकिन मधुसूदन ने प्रत्येक नायिका के गुण स्वाभाविक प्रेम आदि का वर्णन ऐसी खूबी के साथ

किया है कि सब की प्रकृति अलग अलग मालूम होती है। प्रत्येक का वर्णन ऐसा मनोहर और रोचक है कि पढ़ते ही बनता है। अनेक गुण सम्पन्न होते हुए भी अन्य काव्यों की भाँति इसमें भी—पाश्चात्य भावों से प्रभावित होने के कारण—कुछ दोष आ गये हैं। उर्वशी, सूर्पनखा और तारा की अनुचित प्रेम-पत्रिकाओं की रचना करके मधुसूदन ने साहित्य में एक कुरुचि उत्पन्न कर दी है। चाहे सूर्पनखा और उर्वशी की प्रेम-पत्रिकाओं का किसी प्रकार समर्थन किया जा सके; लेकिन तारा की पत्रिका का समर्थन किसी प्रकार नहीं हो सकता। क्योंकि हमारे यहाँ गुरु-पत्नी गमन सब पापों से बड़ा माना जाता है।

यहाँ वीराङ्गना में से कुछ कविता नीचे उद्धृत की जाती है—

(द्वारकानाथ के प्रति रुक्मिणी का पत्र ।)

शुनि नित्य ऋषिमुखे, हृषिकेश तुमि
यादवेन्द्र, अवतीर्ण अवनीमंडले
खण्डिते धरार भार दण्डि पापि-जने।
चाहे पदाश्रय नमि ओ राजीव पदे
रुक्मिणी,—भीष्मक-पुत्री, चिरदासी तव,—
तार ! हे तारक, तारे ए विपत्ति-काले।
केमने मनेर कथा कहिव चरणे,
अबला कुलेर बाला आमि, यदुमणि ?
कि साहसे बांधि बुक दिव जलाञ्जलि
लज्जाभये ? मुदे आँखि, हे देव सरमे;
ना पारे आँगुल-कुल धरिते लेखनी,

काँपे हिया थरथरे । ना जानि कि करि,
ना जानि कहारे कहि ए दुःख-काहिनी ।
सुनि तुमि दयासिन्धु; हाय तोमा बिना
नाहि गति अभागीरे आर ए संसारे ।
निशार स्वपने हेरि पुरुष-रतने
काय-मन अभागिनी सँपियाछे ताँरे,

× × × ×

जत बार हेरि, देव, आकाशमन्डले
घनवरे, शक्र-धनुः चूड़ारूपे शिरे,—
तड़ित सुधड़ा अङ्गे,—पाद्य अर्घ दिया
साष्टाङ्गे प्रणमि आमि पूजि भक्तिभावे ।
भ्रान्ति-मदे माति कहि,—"प्राणकान्त मम
आसिछेन शून्यपथे तुपिते दासीरे" ।
उड़े यदि चातकिनी, गञ्जि तारे रागे ।
नाचिले मयूरी, तारे मारि यदुमणि ।
मन्द्रे यदि घनवर, भावि आँखि मुदि,
गोप-कुल-वाला आमि, वेणुर सुरवे,—
डाकिछेन सखा मोरे यमुना-पुलिने ।
कहि शिखिवरे,—धन्य तुइ पक्षि कुले,
शिखन्डि ! शिखन्ड तोर मन्डे शिरः जाँर,
पूजेन चरण तार आपनि धूर्जटि" !
आर परिचय कत कत दिव पद युगे ?
शुन एवे दुःख-कथा । हृदय-मन्दिरे
स्थापि से सुश्याम-मूर्ति सन्यासिनी यथा
पूजे निज इष्टदेव गहन विपिने
पूजिताम आमि नाथे । एवे भाग्य-दोषे

चेदीश्वर नरपाल शिशुपाल नामे,
(शुनि जनरव) ना कि आसिछेन हेथा
वरवेशे वरिबारे; हाय अभागीरे!
कि लज्जा! भाविया देख. हे द्वारकापति
केमने अधर्म-कर्म करिबे रुक्मिणी?
स्वेच्छाय दियेछे दासी, हाय, एक जने'
कायमनः; अन्यजने—क्षम गुणनिधि,—
उड़े, प्राण पोड़ा कथा पड़े जबे मने।
कि पापे लिखिला विधि ए यातना भाले?
आइस गरुड़-ध्वजे पाञ्चजन्ये नादि,
गदाधर, रूप गुण, थाकित यद्यपि
ए दासीर—कहिताम, "आइस, मुरारि॥
आइस; वाहन तव वैनतेय यथा,
हरिल अमृतरस पशि चन्द्रलोके,
हर अभागीरे तुमि प्रवेशि ए देशे"।
किन्तु नाहि रूप-गुण, कोन मुख दिया
अमृतेर सह दिब आपन तुलना?
दीन आमि; दीनबन्धु तुमि, यदुपति,
देह लग्ये रुक्मिणीरे से पुरुषोत्तम,
जार दासी करि विधि सृजिला ताहारे।
रुक्मी नाम सहोदर,-दुरन्त से अति.
बड़ प्रियपात्र तार चेदीश्वर बली।
सरमे मायेर पदे नारि निवेदिते
ए पोड़ा मनेर कथा। चन्द्रकला सखी,
तार गला धरि, देव, कान्दि दिवानिशि।

× × × ×

मुरारि! नाशिला कंसे शुनियाछे दासी;
कंसजित; मधुनामे दैत्य-कुल-रथी
बधिला, मधुसूदन, हेलाय ताहारे।
कि वर्णिवे गुण तव, गुणनिधि तुमि
कालरूपे शिशुपाल आसिछे सत्वरे—
आइस ताहार अग्रे। प्रवेशि ए देशे
हर मोरे—ह'रे लये देह ताँर पदे,
हरिला ए मन जिनि निशार स्वपने।

(हिन्दी अनुवाद)

हृषीकेश! ऋषियों से सुनती तुम जब जग में अवतरते।
खंडित करते भूमि-भार को—पापी को दंडित करते॥
चिरदासी भीष्मक-पुत्री पद-पद्मों में प्रणाम करती।
चाहे तव चरणाश्रय तारक! तारो दुख से है मरती॥१॥
इस विपत्ति में यदुमणि अपने मन की बात कहूँ कैसे?
अबला-कुल बाला हूँ, जलती—जग की आँच सहूँ कैसे?
किस साहस से धैर्य धार अंजलि दूँगी? लज्जा आती।
आखें लज्जा से मुँदतीं—लेखनी नहीं पकड़ी जाती॥२॥
हृदय काँपता थर थर है न जानती? हाय करूँ कैसा!
दुख-गाथा भला कहूँ किससे हो दयासिन्धु, सुनती ऐसा।
तुम बिन अभागिनी का कोई अपना जग में न-कहूँ किसको?
निशा-स्वप्न में पुरुष रत्न लख सौंप दिया तन मन उसको॥३॥
गगनांगन में देव! जिस समय देखूँ रूप मेघवर का।
विद्युत के हैं वसन मनोरम मौर हरिधनुष सिर पर का॥
पाद्य अर्घ्य दे दंड-प्रणति कर भक्ति-भाव से कर पूजन।
प्रेम-मद से हो मतवाली मैं कहती हूँ 'यों चितरंजन॥४॥

शून्य मार्ग से इस दासी को देने तोप नाथ मेरे ।
आये हैं इस रम्य रूप में नभ में घोर घटा घेरे ॥
यदि चातकिनी उड़ती है तो उसका तिरस्कार करती ।
यदुमणि मंजु मयूरी को मारती अगर वह है नचती ॥५॥
आँखें मूँद सोच करती हूँ यदि गरजे घनवर माला ।
मेरे ऊपर दयादृष्टि कर, समझ गोपकुल की बाला—
यमुना तट पर मुरली स्वर से मुझे बुलाते हैं प्यारे ।
मोरों से कहती, मयूर ! तुम धन्य-पक्षियों में—सारे ॥६॥
क्योंकि पंख तव बड़े चाव से जो अपने शिर पर धरते ।
उनके चरणों की पूजा नित स्वयं कपाली हैं करते ॥
युग चरणों का क्या परिचय दूँ ? सुनो दुख कथा अब मेरी ।
श्याम मूर्ति को मनमंदिर में थाप पूजती यों—चेरी ॥७॥
संन्यासिनी घोर-घन-वन में जैसे नाथ ! नहीं डरती ।
बड़े चाव से इष्टदेव का नित्य-प्रति पूजन करती ॥
भाग्य दोष से चेदीश्वर शिशुपाल नृपति वरने आता—
भव्य-भेष से अभागिनी को—जनरव यही सुना जाता ॥८॥
द्वारिकेश देखो, सोचो, यह बात शर्म की है—कैसे ?
रुक्मिणि भला करेगी क्यों कर पाप कर्म भीषण ऐसे ?
दासी ने तन मन स्वेच्छा से एक सुजन को सौंप दिया ।
क्षमा करो—सुन बात अन्य की उड़ने लगता हरे ! हिया ॥९॥
किन पापों से विपति भाग्य में विधि ने लिखे जिसे सहती ।
गुण सुरूप कुछ अगर गदाधर ! होता तो तुमसे कहती—
वैनतेय पर चढ़े बजाते पांचजन्य माधव ! धाना !
हे मुरारि ! तुम इस प्रकार दासी के ढिग आना ! आना ! ॥१०॥
चन्द्रलोक में तव वाहन ने घुस ज्यों अमृत किया हरण ।
त्यों आ इस प्रदेश में हर लो अभागिनी को रमारमण ॥

पर सुरूप गुण नहीं कहूँ किस मुख से अमृत से तुलना।
प्रभु मैं दीन, दीनबन्धो तुम इन बातों पर कुछ घुलना ॥११॥
जिसकी दासी बना जगत में विधि ने है उत्पन्न किया॥
उस पुरुषोत्तम को दो लेकर-सु रुक्मिणी का जले हिया।
मेरा रुक्मी नाम सहोदर—अति दुरन्त उसको जानो।
चेदीश्वर नृप बली—पूर्ण है प्रीतिपात्र उसका मानो ॥१२॥
मन की बात अभागी लज्जा से न जननि से मैं कहती।
गला पकड़ सखि चंद्रकला का निशि दिन रोती दुख सहती॥
धनुधारी उद्धार करो आ मेरा—तुमको जान लिया।
ऐसा सुना मुरारे! तुमने कठिन कंस का नाश किया ॥१३॥
दैत्य-कुल-रथी मधु को सुनती खेल खेलाय मार डाला।
तव-गुण-गण का गुणनिधि! वर्णन भला कौन करने वाला?
काल रूप शिशुपाल आ रहा—इस प्रदेश से मुझे हरो।
हरा स्वप्न में मन को जिसने, उसके ही—पद-पद्म धरो ॥१४॥*

यूरोप प्रवास।

[१८६२ से १८६६ ई० तक]

यूरोप-प्रवास की कथा लिखने के पूर्व मधुसूदन की पारिवारिक दशा का भी कुछ वर्णन कर देना अत्यावश्यक है क्योंकि पाठक लोग पुस्तकों की आलोचना पढ़ते पढ़ते मधुसूदन का पारिवारिक वृत्तान्त जानने के लिये उत्सुक हो उठे होंगे। मधुसूदन पहिले ही की भाँति पुलिस-आफ़िस में जाते थे। अपने चचा के लड़कों से मुकदमा जीत

पारिवारिक दशा

---

* श्रीयुत पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'मुकुन्द' महोदय द्वारा अनूदित अप्रकाशित 'वीराङ्गना महाकाव्य' से।

जाने के कारण उन्हें उनकी पैत्रिक सम्पत्ति भी मिल गयी थी। पुलिस-अदालत, पैत्रिक सम्पत्ति और पत्रों में लेखादि लिखने से उन्हें जो कुछ प्राप्त होता था उसके द्वारा मध्यम श्रेणी के गृहस्थ की तरह उनका कार्य अच्छी तरह चलता था, कलकत्ता आने पर उनके एक पुत्री और एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था। सुलेखक सुकवि और विद्वान् होने के कारण समाज में उनका यथेष्ठ सम्मान भी था। एक मनुष्य के सुख के लिये जिन जिन साम-ग्रियों की आवश्यकता है उनके पास वे सब मौजूद थीं परन्तु तो भी मधुसूदन को सुख न था। यद्यपि वे बाहर से देखने में विलासी, आमोद-प्रिय और प्रसन्न मालूम होते थे लेकिन उनका हृदय भीतर ही भीतर विषम-यन्त्रणा से पीड़ित रहता था। इसका कारण यही था कि मधुसूदन मन को संयत करना जानते ही न थे, संतोष तो उनमें नाम मात्र का भी न था। इस पर भी जिस गृह-रत्न को उन्होंने अपने जीवन-सुख का प्रधान अंग समझा था, जिसके लिये अपने जीवन को एकदम बदल डाला था। उसने उनके दोनों पैरों को बेड़ी की तरह जकड़ लिया था। मन की इस भीषण अशान्ति के समय मधुसूदन का ब्रजाङ्गना आदि काव्यों का रचना सचमुच ही आश्चर्यजनक है। लेकिन अर्थप्राप्ति का साधन बन जाने के कारण ग्रन्थ-रचना मधुसूदन को शान्ति प्रदान करने का एक कारण बन गयी थी, इसलिये अशान्त चित्त होते हुए भी मधुसूदन का मन ग्रथ-रचना की ओर खूब लगता था।

मधुसूदन की अशान्ति का प्रधान कारण धन की कमी थी। यद्यपि मधुसूदन अपने परिवार के खर्च के लिए यथेष्ठ धन उपा-र्जन कर लेते थे लेकिन लड़कपन से ही उन्हें जैसा शाही खर्च करने का स्वभाव पड़ गया था, उसके अनुसार उस दशा में उनके

लिये राजा महराजाओं की सम्पत्ति भी थोड़ी थी । वे बार बार यही कहते थे कि अर्थाभाव दूर होने पर ही मैं सुखी हो सकता हूँ । लड़कपन से ही इङ्गलैंड जाने की उनकी प्रबल आकांक्षा थी, अतएव उन्होंने अर्थाभाव का कष्ट दूर करने के लिये इँगलैंड जाकर बैरिस्टरी पास करने का निश्चय किया । उन्होंने अपनी पैत्रिक सम्पत्ति अपने पिता द्वारा प्रतिपालित महादेव चट्टोपाध्याय को इस शर्त्त पर सौंपी कि वे मुझे इँगलैंड जाने के लिये कुछ रुपया पेशगी देंगे और मेरे परिवार के खर्च के लिये भी डेढ़ सौ रुपया मासिक देते रहेंगे । महादेव के सुव्यवहार के लिये मधुसूदन के बाल्यकाल के मित्र राजा दिगम्बर महाशय जामिन हुए थे । इससे मधुसूदन को संतोष और विश्वास हो गया था । लेकिन इन लोगों ने पीछे कैसा गहिरा धोखा दिया और मधुसूदन को कैसी कैसी भयंकर मुसीबतों का सामना करना पड़ा यह पाठकों को पीछे मालूम होगा ।

अट्ठारह वर्ष की उम्र में मधुसूदन ने जो संकल्प किया था, बहुत कठिनता से उसके पूरा होने का अवसर इतने दिनों बाद प्राप्त हुआ । अपने परिवार का प्रबन्ध करके मधुसूदन ६ जून १८६२ ई० को कांडिया नामक जहाज पर चढ़कर इंगलैंड के लिये रवाना हुए । जुलाई के अन्तिम सप्ताह में इँगलैंड पहुँच कर बैरिष्टरी करने के लिये मधुसूदन 'ग्रेस इनन' (Greys Inn) समाज में भरती हुए लेकिन समाज की व्यवहारिक बातों में मधुसूदन की रुचि कभी नहीं थी वे धनोपार्जन के अभिप्राय से ही बैरिस्टरी का व्यवसाय सीखने में प्रवृत्त हुए थे, इसीलिये बैरिस्टरी पढ़ते समय मधुसूदन के सम्मान योग्य कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई । मधुसूदन के यूरोप जाने का दूसरा उद्देश्य यूरोपीय भाषाओं में निपुणता प्राप्त करना था । अतएव

यहाँ आकर उन्होंने जो यूरोपीय भाषाएँ सीखी थीं उनमें अच्छा ज्ञान प्राप्त करने के लिये भी कुछ समय लगाया।

हम पहिले लिख चुके हैं कि भारत में रहते हुए मधुसूदन किस कष्ट से समय व्यतीत करते थे; यूरोप आकर उनका जीवन और भी अधिक विषादमय हो गया। वे जिन लोगों पर अपने परिवार का भार सौंप आये थे, उन विश्वासघातियों ने भारी धोखा दिया। उनके स्त्री बच्चों को अर्थाभाव से भारी कष्ट मिलने लगा। अंत में कष्ट निवृत्ति का कोई उपाय न देखकर मधुसूदन-दत्त की पत्नी अपने पति के स्वदेश छोड़ने के एक वर्ष के भीतर ही अपने संतानों सहित इँगलैंड जा पहुँची। इससे मधुसूदन का खर्च बहुत अधिक बढ़ गया, मधुसूदन मितव्ययी भी नहीं थे, अत-एव थोड़े ही दिन में उन्हें गहने गृहस्थी का सारा सामान और कपड़े लत्ते सब कुछ गवर्नमेंट आफ़िस में गिरवी रख देने पड़े। इसके बाद वे अपनी पत्नी के स्वास्थ्य सुधारने और यूरोपीय भाषा सीखने की सुविधा के लिये फ्रांस के भरसेल्स नगर में आ पहुँचे। यहाँ पर आकर उनकी दुर्दशा चरम सीमा पर पहुँच गयी, कभी कभी तो उन्हें उपवास करना पड़ता था। यहाँ पर एक फ्रेंच महिला मधुसूदन पर विशेष प्रेम रखती थी, उसके तथा उसके प्रयत्न से अन्य लोगों द्वारा मधुसूदन को कुछ मिल जाया करता था, इससे उनके दिन किसी तरह व्यतीत हो जाते थे। लेकिन इस प्रकार भला कितने दिन तक काम चल सकता था। अंत में मधुसूदन ने दीनों के परम सहायक उदारहृदय श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से सहायता के लिये प्रार्थना की। मधुसूदन ने अपना ब्रजाङ्गना काव्य विद्यासागरजी को ही समर्पित किया था। विद्यासागरजी मधुसूदन से प्रेम रखते थे उन्होंने मधुसूदन को यूरोप जाने के लिये उत्साहित

किया था। मधुसूदन का पत्र पाकर रुपया पास न होने के कारण उन्होंने डेढ़ हजार रुपया कर्ज़ लेकर उनके पास भेज दिया था, इस प्रकार उन्होंने कई बार मधुसूदन की सहायता की थी। मधुसूदन विद्यासागरजी का कुछ ही ऋण चुकाने में समर्थ हुए थे।

यूरोप में आकर मधुसूदन ने फ्रेंच और इटालियन भाषाओं में इतनी योग्यता प्राप्त कर ली थी कि वे कभी कभी चित्त के विनोद के लिये उनमें कविता करते थे। लेकिन मधुसूदन ने परिश्रम करके इन भाषाओं में इतनी योग्यता इसलिये नहीं पैदा की थी कि इन भाषाओं में पुस्तकें लिखकर प्रसिद्धि प्राप्त करूँगा। विदेशी भाषाओं द्वारा ख्याति प्राप्त करने का विचार उन्होंने पहले ही त्याग दिया था। इन भाषाओं द्वारा ज्ञान प्राप्त करके अपनी मातृ-भाषा को उन्नत बनाना ही मधुसूदन का प्रधान उद्देश्य था। लेकिन इधर उनके मन में एक यह नवीन विचार उत्पन्न हो गया कि पाश्चात्य पंडितों को अपने प्राच्य-साहित्य का दो एक अमूल्य रत्न भेंट करूँ। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने सीताजी के चरित्र को लेकर अँगरेजी में "सीता-काव्य" नामक एक ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया था; यह काव्य सीताजी के बनवास से आरम्भ होता है। लेकिन अनेक विपत्तियों के कारण मधुसूदन इस काव्य को पूरा न कर सके केवल दो तीन सौ पंक्तियाँ ही लिख कर रह गये। इसके अतिरिक्त यूरोप में रहते समय उन्होंने अँगरेजी में कुछ स्फुट कविताएँ भी लिखी थीं। बँगला में भी 'द्रौपदी स्वयंम्बर' और 'सुभद्राहरण' काव्य लिखना आरम्भ किया था। 'तिलोत्तमासम्भव' काव्य को फिर से लिखना और 'वीराङ्गना' काव्य के अधूरे अंश को पूरा करना आरम्भ किया था लेकिन इनमें से कोई भी पूरा न हो सका

यूरोप में रहते समय मधुसूदन को बड़ी विपत्ति के साथ दिन बिताने पड़ते थे, इसलिये मधुसूदन यदि कभी कोई पुस्तक लिखना आरम्भ करते थे तो चित्त न लगने के कारण उसे छोड़ कर दूसरी पुस्तक लिखने का विचार करते थे। वे यूरोप में रह कर केवल चतुर्दशपदी कवितावली नामक स्फुट कविताओं की ही पुस्तक लिख सके; यदि यह भिन्न २ विषयों पर छोटी कवितायें लिखी हुई पुस्तक न होती, तो इसका भी पूरा होना असम्भव था। यद्यपि ब्रजाङ्गना, मेघनादवध आदि के समान इसकी कविता उच्च श्रेणी की नहीं है, लेकिन मधुसूदन के विचार, उनकी मानसिक अवस्था आदि के जानने के लिये इस पुस्तक का पढ़ना अत्यावश्यक है। इस पुस्तक की कविताओं में मधुसूदन ने लिखा है कि मैं बाल्यावस्था में काशीरामदास, कृत्तिवास आदि अपनी मातृ-भाषा के कवियों के ग्रन्थ कितने चाव के साथ पढ़ता था। किस प्रकार उन्हें एकदम भूल गया और फिर कैसे उनकी तरफ मेरा ध्यान आकर्षित हुआ। उन्होंने अपनी कविताओं में कृति-वास, काशीरामदास, मुकुन्दराम, भारतचन्द्र और पूर्ववर्ती ईश्वर-चन्द्र गुप्त इनमें से प्रत्येक के प्रति सहानुभूति प्रगट की है। परा-धीन भारतभूमि, पौराणिक घटनाओं, प्राकृत्तिक सौन्दर्य, आदि कवि वाल्मीकि. कोकिल कंठ जयदेव, कवि-कुल-गुरु कालिदास, प्रसिद्ध कवि दाँते, महाभारत के युद्ध, सुभद्राहरण, आदि अनेक विषयों पर कवितायें लिखी हैं।

इस प्रकार पाँच वर्ष बाद मधुसूदन का दुखद प्रवास-काल समाप्त हुआ। वे बैरिस्टरी पास करके १८६७ ई० के मार्च मास में स्वदेश लौट आये।

जीवन के अन्तिम दिन ।

[१८६७ से १८७३ ई० तक]

मधुसूदन स्वदेश लौट आये । जिन उदार विद्यासागर महाशय ने प्रवास काल में मधुसूदन की बड़ी भारी सहायता की थी उन्होंने मधुसूदन के व्यवसाय के लिये पहिले से ही सुविधा कर रक्खी थी । उनके तथा अन्य मित्रों के उद्योग से मधुसूदन १८६७ ई० में कलकत्ता हाईकोर्ट में वैरिस्टरी करने लगे । यद्यपि मधुसूदन अपने समय के वैरिस्टरों में सभी से बढ़े चढ़े थे परन्तु वे व्यवहार शास्त्र में निपुण नहीं थे । अपने सांसारिक अनुभव द्वारा दूसरे का मुकदमा जिताने की बात तो दूर रही वे अपने घर का भी उत्तम प्रबन्ध करने का व्यवहारिक ज्ञान नहीं रखते थे । परन्तु वे एकदम असफल नहीं हुए, अपनी रचनाओं के कारण वे पहिले से ही विख्यात थे अतएव आरम्भ में उनके व्यवसाय की यथेष्ठ उन्नति होती दिखलाई पड़ी । एक साल में उनकी आमदनी एक हजार रुपये से डेढ़ हजार रुपये मासिक हो गयी लेकिन इससे अधिक उन्नति नहीं हुई । अच्छा व्यवहारिक ज्ञान न होने के कारण अंत में धीरे धीरे उनकी आमदनी घटने लगी । तब वे प्रिवी कौंसिल में प्रधान अनुवादक का कार्य करने लगे । यद्यपि उन्होंने अपनी पत्नी को सुखी करने के लिये सरस्वती-सेवा छोड़कर लक्ष्मी की आराधना की ओर ध्यान लगाया लेकिन वह चंचला उनके अनुकूल नहीं हुई ।

यूरोप से लौटने पर मधुसूदन छः वर्ष तक जीवित रहे । इन दिनों उनका अधिकांश समय वैरिस्टरी के कार्य में व्यतीत होता था । लेकिन साहित्य की ओर अत्यधिक झुकाव होने के कारण उन्होंने उसे एकदम नहीं छोड़ दिया था, वे बीच बीच में

साहित्य-सेवा के कार्य में हाथ लगाते थे। इस समय उन्होंने कई पुस्तकें लिखना आरम्भ किया था लेकिन उनमें नीतिमूलक स्फुट कविताओं और 'हैक्टर-बध' के अतिरिक्त सभी अधूरे रह गये मधुसूदन ने नीतिमूलक कविता 'ईसाप्स फेबुल्स' (Aeshops Fables) के आदर्श पर पाठशालाओं में पाठ्य पुस्तक होने की दृष्टि से लिखी थी, इस पुस्तक कीं कविताएँ सरल, शिक्षाप्रद और रोचक हैं। 'हैक्टर बध' इलियड के बारहवें सर्ग तक के कथा भाग को लेकर लिखा गया है। नीतिमूलक कविता की भाँति उन्होंने इसे भी पाठ्य पुस्तक होने कीं दृष्टि से लिखा था, लेकिन यह ग्रन्थ पाठ्य पुस्तक नहीं हुआ। पाश्चात्य कथानक के आधार पर रचित होने के कारण यह आदि से अंत तक पाश्चात्य भावों से भरा है। इसकी भाषा ग्रामीण और व्याकरण की त्रुटियों से भरी है तो भी इसकी भाषा में ओज और उत्साह-वर्धन अधिक है।

यूरोप से लौटने के पश्चात् अपने छः वर्ष के जीवन में मधुसूदन ने पाँच वर्ष तक वैरिस्टरी की। यूरोप में रहते समय वे इतने अधिक ऋणी हो गये थे कि उनकी सारी सम्पत्ति ऋण चुकाने में बिक गयी थी। बैरिस्टरी आरम्भ करने के लिये उन्हें कर्ज़ लेकर काम चलाना पड़ा था। मधुसूदन आमदनी बढ़ने की आशा से आरम्भ में कर्ज़ लेकर ठाटबाट से बैरिस्टरी करते थे। मितव्ययिता और आत्मसंयम तो उनमें लड़कपन से ही नहीं था, अवस्था बढ़ने के साथ ही साथ ये दुर्गुण और भी बढ़ गये थे, अनेक विपत्तियाँ झेल कर भी वे नहीं चेते। इधर उनकी उदारता भी अनुचित रीति से बढ़ गयी थी। ऋणी होते हुए भी वे बिना कुछ सोचे-विचारे मुक्तहस्त हो दूसरों की सहायता करते थे, रुपया देते समय उनका हिसाब भी नहीं लिखते थे। यहाँ पर हम उनकी अनुचित उदारता का एक दृष्टान्त देते हैं।

एक बार उनके मित्र बाबू हरिमोहन वन्दोपाध्याय अपने किसी परिचित सज्जन को मधुसूदन के पास मुकदमे के सम्बन्ध में सलाह दिखाने के लिये लिवा लाये। सलाह पाने पर वे मधुसूदन को नियमित फीस देने लगे, बहुत अनुरोध करने पर भी मधुसूदन ने उनसे फीस नहीं ली। लेकिन जब वे चले गये तो मधुसूदन ने अपने मित्र बाबू हरिमोहन से कहा, भाई! जब आप उन्हें अपना सुहृद जानकर लिवा लाये थे तो मैं किसी तरह उनसे फ़ीस नहीं ले सकता था। लेकिन आज मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है, यदि आपके पास रुपया हो तो आप मेरी स्त्री को पाँच रुपये दे आइये, जिससे ठीक समय पर मेरे लिये भोजन तैयार रहे। आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय होते हुए भी मधुसूदन की उदारता का यह हाल था, उनका ऋण भी बहुत बढ़ गया था। सांसारिक अवस्था के साथ ही साथ उनकी मानसिक अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। इस अवस्था में जब वे ऋण-चिन्ता और अर्थाभाव से दुखी होते थे तब या तो कविता-देवी की शरण लेते थे या मदिरा की। जीवन की भयंकर से भयंकर अवस्था में मधुसूदन को वाग्देवी की शरण में जाने से शान्ति मिलती थी, वे अन्य सारी बातें भूल जाते थे। मधुसूदन की भांति कविता करते समय जो कवि तल्लीन न हो जाय वह प्रकृत कवि होने का दावा व्यर्थ ही करता है। एक दिन मधुसूदन के कोई मित्र उनसे मिलने आये तो उन्होंने देखा कि कई ऋण-दाता आँगन में शोर मचा रहे हैं और मधुसूदन एक कमरे में बैठे हुए कविता-रचना कर रहे हैं। जब उन्हें कविता देवी से भी शान्ति नहीं मिलती थी तो वे ऋण के अपमान से व्यथित होकर मदिरा की शरण जाते थे।

अत्यधिक मदिरा-सेवन और असंयम के कारण मधुसदन

की शारीरिक अवस्था बहुत खराब हो गयी थी। जो मधुसूदन युवावस्था में पूर्ण स्वस्थ थे उन्हीं के शरीर में थोड़े ही दिनों में उदरी, गले की नली में जलन होना, हृदय का धड़कना आदि अनेक रोगों ने घर कर लिया। आर्थिक कष्ट के ऊपर यह विषम शारीरिक यंत्रणा,—मधुसूदन के कष्ट का ठिकाना न रहा। लेकिन वे शारीरिक कष्ट की अपेक्षा ऋण-कष्ट से ही अधिक व्यथित थे वे डरते कि कहीं ऋण के कारण मुझे जेल में जाकर न मरना पड़े। जेल जाने के अपमान की अपेक्षा वे आत्महत्या को ही अच्छा समझते थे। बैरिस्टरी में उन्नति की आशा न देख कर मधुसूदन ने मानभूमि के अंतर्गत पंचकोट के राजा के यहां कानून उपदेशक (Leagal Adviser) का कार्य ग्रहण कर लिया था, लेकिन राजा की चंचलता के कारण उसे छोड़कर १८१२ ई० में कलकत्ते लौट आये और फिर बैरिस्टरी करने लगे।

इधर मधुसूदन का रोग बहुत बढ़ गया था, १८१२ ई० में उनका रोग असाध्य हो उठा। उनकी पत्नी का स्वास्थ्य पहिले से ही खराब था। पति-पत्नी दोनों की अवस्था शोचनीय हो जाने के कारण पुत्र और पुत्री का पालन करना भी कठिन हो गया। बहुत ज्यादा ऋण हो जाने के कारण दम्पति अपना सामान बेच कर किसी तरह दिन काटते थे। मृत्यु-शय्या पर पड़े होते हुए भी मधुसूदन अर्थोपार्जन के लिये जो कुछ कर सकते थे, करते थे। इस समय बङ्ग रङ्गभूमि के संचालकों ने मधुसूदन से एक नाटक लिखने का अनुरोध किया तो उन्होंने 'मायाकानन' नाम का एक नाटक लिखा। लेकिन वे इस नाटक को पूरा नहीं कर सके, उनकी मृत्यु के बाद बङ्ग-रङ्गभूमि के अध्यक्षों ने उसे पूरा करके प्रकाशित किया।

मधुसूदन के जीवन की भाँति 'मायाकानन' भी दुखान्त

नाटक है। इस ग्रन्थ का कथानक दो राजपुत्रों और दो राजपुत्रियों की आत्महत्या पर समाप्त होता है। जीवन के अन्तिम दिनों में मधुसूदन के हृदय में दिन-रात आत्महत्या-द्वारा अपने जीवन के कष्टों को दूर करने का भाव बना रहता था, इसी भाव को उन्होंने 'मायाकानन' नाटक में व्यक्त किया है। मधुसूदन ने जिस समय इसे लिखा था उस समय उनकी अवस्था बहुत भयंकर थी; रोग की पीड़ा से वे कभी बेहोश हो जाते थे, कभी हृदय से खून निकलने के कारण अशक्त हो जाते थे, लेकिन तौ भी धन पाने की आशा से होश आते ही लिखना आरम्भ करते थे; उस समय यदि कोई मित्र या सम्बन्धी पास में होता था तो उसी से लिखवाते थे। जो लोग मधुसूदन की जीवन-घटनाओं से परिचित हैं, वे भली भाँति जानते है कि उन्होंने 'मायाकानन' के अनेक स्थल अपने हृदय के रक्त से लिखे हैं। इस समय उन्होंने बङ्ग-रङ्गभूमि के लिये "विष नहीं धनुगु ण" नामक एक नाटक लिखना आरम्भ किया, वे इसका थोड़ा ही भाग लिख सके।

इस प्रकार मधुसूदन बड़े कष्ट से अपना जीवन बिता रहे थे, लेकिन वे अपने अत्यन्त निकटवर्ती मित्रों के सिवाय किसी से भी सहायता के लिये प्रार्थना नहीं करते थे, ऐसा करना उनकी प्रकृति के एकदम विरुद्ध था। कलकत्ते में उनके गुण के पक्षपाती बहुत से लोग थे उनसे अपनी विपत्ति का समाचार कहने पर उनको काफ़ी सहायता मिलने की आशा थी, लेकिन आत्माभिमानी मधुसूदन ने कभी अपनी दुरवस्था सर्वसाधारण को नहीं जनायी। जिनके साथ उनका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था वे सदा उनकी सहायता करते रहते थे। इन सहायकों में सुप्रसिद्ध स्वदेश-प्रेमी बैरिस्टर उमेशचन्द्र बन्द्योपाध्याय और बाबू मनमोहन घोष का नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य

है यदि ये दोनों सज्जन मधुसूदन की सहायता न करते तो उन्हें और भी कष्ट से जीवन व्यतीत करना पड़ता। उमेशचन्द्र तो इस उदारता से उनकी सहायता करते थे कि मधुसूदन और उनकी पत्नी मरते दम तक उनकी प्रशंसा करते रहे। इन अन्तिम दिनों में मधुसूदन ने अपनी पुत्री शर्मिष्ठा का विवाह कर दिया था।

जीवन के अन्तिम दिनों में ऋणदाताओं के कष्ट से तंग आकर मधुसूदन कलकत्ता छोड़ना चाहते थे। इसी समय उत्तर-पाड़ा के ज़मीदार उदारहृदय बाबू जयकृष्ण मुखोपाध्याय ने मधुसूदन की दुरवस्था जानकर उन्हें उत्तरपाड़ा में रहने के लिये बुलाया, मधुसूदन उत्तरपाड़ा में जाकर रहने लगे। यहाँ पर उनका खर्च थोड़े में ही चल जाता था। जयकृष्ण बाबू, उनके पुत्र प्यारीमोहन तथा उनके पौत्र रासविहारी मुखोपाध्याय सदैव मधुसूदन के पास रहकर उन्हें धैर्य दिया करते थे, इससे मधुसूदन को बहुत कुछ सान्त्वना मिलती थी। यद्यपि इन दिनों मधुसूदन करीब करीब मृत्यु-शय्या पर सोये हुए के ही समान थे लेकिन जब उनकी यंत्रणा कुछ कम होती थी तब वे मिलने आये हुए लोगों को अपने प्रिय कवि मिल्टन, दाँते आदि की कविताएँ पढ़कर सुनाते या अपने जीवन के अनुभव और अपनी विदेश-यात्रा की करुण-गाथा का वर्णन करते। उनके जीवन के ये अन्तिम दिन बहुत दुखद हो गये थे, एक एक दिन युगों के समान बीतता था। यहाँ पर हम एक दिन की बात लिखते हैं; उस दिन गौरबाबू मधुसूदन को देखने आये थे। उन्होंने आकर देखा कि मधुसूदन के मुख से बार बार खून गिरता है, उनकी स्त्री हेनरियेटा रोग की पीड़ा से कहरती हुई बेहोश सी हो गयी है। हेनरियेटा की यह अवस्था देखकर गौरबाबू उसकी सहा-यता करने के लिये आगे बढ़े। लेकिन उस पतिव्रता को अपनी

पीड़ा से अपने पति की पीड़ा ही अधिक मालूम होती थी अतएव उसने कहा, "मैं मरने से नहीं डरती यदि आप मेरे स्वामी की सहायता कर सकते हैं तो कीजिए।"

जब उत्तरपाड़ा में मधुसूदन की पीड़ा बहुत बढ़ गयी तब वे कलकत्ते लौट आये। उस समय उनकी स्त्री की भी बहुत खराब अवस्था थी, न जाने कब प्राण निकल जाता। अतएव मधुसूदन के बन्धुओं ने उनकी स्त्री को उनकी पुत्री शर्मिष्ठा देवी के पास उत्तरपाड़ा में ही छोड़कर उन्हें अलीपुर के दातव्य औषधालय में लिवा लाये। यहाँ पर आकर मधुसूदन का कष्ट चरम सीमा पर पहुँच गया। सुख-प्राप्ति की इच्छा से जिस निष्ठुरता से अपने माता-पिता को छोड़कर वे विधर्मी हो गये थे उसका प्रायश्चित्त इसी जीवन में इतने दिन बाद दातव्य औषधालय में आकर पूरा हो गया। जिस प्रकार मधुसूदन की माता मरते समय अपने प्रिय पुत्र मधुसूदन का मुख न देख सकने के कारण बेचैन होकर मरी थीं, उसी प्रकार मधुसूदन भी इन अन्तिम दिनों में अपने स्त्री-पुत्र आदि का मुख न देख सकने के कारण बहुत व्याकुल हुए थे; धर्मपत्नी और पुत्रादि का स्मरण आते ही कभी तो वे अपने चित्त को धीरज देते थे, कभी फूट फूट कर बच्चों की तरह रोने लगते थे। रोग की पीड़ा तो थी ही, प्रियजनों के वियोग का दुख उन्हें और भी पीड़ित करने लगा इसी समय उन्हें अपनी पत्नी की मृत्यु का संवाद मिला। अपनी प्रियतमा को अन्तिम समय में न देख सकने तथा शोकप्रकट करने के लिये समाधि-स्थल तक न जा सकने के शोक से उनका हृदय टुकड़े टुकड़े हो गया। कष्ट के ऊपर कष्ट! कष्टों का विराम नहीं था। मधुसूदन के अन्तिम दिन ऐसे कष्ट से बीते जैसे लाखों में शायद ही किसी के बीतते होंगे। मनमोहन बाबू तथा मधुसूदन

के अन्य मित्रों ने समाधि-क्रिया करने के बाद मधुसूदन को उनकी पत्नी की मृत्यु का सारा समाचार बतलाया। मधुसूदन इस चिन्ता से चिन्तित थे कि कहीं धन की कमी के कारण मेरी पत्नी की अन्त्येष्टि क्रिया न हुई हो । इसलिये उन्होंने मन-मोहन बाबू से पूछा, "क्यों मनमोहन बाबू सब कार्य सज्जनोचित हुआ है न ? कोई त्रुटि तो नहीं हुई ?" मनमोहन बाबू ने कहा, इस अवस्था में हम लोगों से जितना सम्भव है, उसमें कुछ भी त्रुटि नहीं हुई ?' अब आप अन्य बातों की चिन्ता न कीजिये, आप शीघ्र ही स्वस्थ होंगे । मधुसूदन कुछ हँसे और उसके बाद उन्होंने कहा, "इस चिकित्सालय के सेवकों और दाइओं को पुरष्कार देने के लिये मेरे पास कुछ नहीं है, यदि इनको कुछ इनाम दिया जाता तो ये मेरी सेवा अच्छी तरह करते, अगर प्रति दिन एक रुपया दे सकता तो मुझे कुछ शान्ति मिलती। मनमोहन बाबू ने कहा, प्रति दिन एक रुपया ? आप चिन्ता न कीजिए, जिस तरह हो सके दिया जायगा।" तब मधुसूदन ने कहा, मनमोहन बाबू मैं आप से अधिक क्या कहूं, मेरे लड़के अर्थाभाव से कष्ट न पावें इसका ध्यान रखिएगा।" इसके उत्तर में मनमोहन बाबू ने जो कहा वह स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने के योग्य है। उन्होंने कहा, "आप निश्चिन्त रहिए, यदि मेरी सन्तान को अर्थाभाव न होगा, तो आप के पुत्रों को भी न होगा।" मनमोहन बाबू ने इस बात का पूरा निर्वाह किया, उन्होंने मधुसूदन के पुत्र अलबर्ट नेपोलियन का पालन पुत्र की तरह ही प्रेम के साथ किया।

मनमोहन बाबू के विदा होने के बाद मधुसूदन तीन दिन तक और जीवित रहे। ये तीन दिन उन्होंने अपनी गलतियों के सोचने में बिताये। उन्हें बारम्बार यह सोचकर अत्यंत कष्ट होता था कि मेरे जीवन की सारी दुर्दशाओं का कारण बिना सोचे

विचारे काम कर डालना ही है। इन दिनों जो कोई उनसे मिलने आता था उसी से वे मुक्तकंठ से अपने जीवन की त्रुटियाँ बतलाते थे और कहते थे, देखो, उच्छृङ्खलता और असदाचार का कैसा भयङ्कर परिणाम होता है। मरने के एक दिन पहिले उन्होंने रेवरेंड कृष्णमोहन वन्दोपाध्याय को बुलाकर बहुत देर तक धर्म के सम्बन्ध में बात चीत की थी और भगवान से क्षमा प्रार्थना करके कहा था, "मैं उसी दयामय की करुणा के ऊपर भरोसा करके मरता हूँ जिन्होने पापियों के उद्धार के लिये ईसा को संसार में भेजा था।" परमात्मा हर एक मनुष्य को दंड देकर उसे सन्मार्ग का रास्ता सुझाता है। मधुसूदन इतने दिनों तक परमात्मा को नहीं पहिचान सके थे; इसीलिये उस न्यायी जगदीश्वर ने अपने सुपुत्र मधुसूदन को ऐसा कठोर दंड देकर उनका अज्ञानांधकार दूर किया था। जिस दिन मधुसूदन परलोकवासी हुए उसी दिन प्रातःकाल उनके भतीजे त्रैलोक्यमोहन उन्हें देखने गये थे। उस समय मधुसूदन का सारा शरीर जकड़ सा गया था, बोली भी मुश्किल से निकलती थी। मधुसूदन ने उनसे कहा—'त्रैलोक्यमोहन! जीवन की कोई भी आशा पूरी नहीं हुई, मैं अनेक आक्षेप लेकर मर रहा हूँ, इस समय बोलने की शक्ति नहीं है। तुम फिर आना, तुमसे और भी बहुत सी बातें कहनी हैं, फिर कहूँगा!' पर फिर कहने का समय न मिला, उनके जीवन का अन्तिम काल आ गया, उसी दिन २९ जून १८८३ ई० को दो बजे दिन में उनका परलोकवास हो गया।

लड़कपन में जिसकी सेवा में दास और दासियाँ सदा लगी रहती थीं, माता-पिता जिसका मन सदा जुगवते रहते थे, किसी बात की त्रुटि नहीं होने देते थे। जो बंगला-कविता में नवयुग का प्रवर्त्तक और अपने समय का सर्वश्रेष्ठ कवि था, सारे

बङ्गाल के लोग जिसका गर्व करते थे! वह अन्त में एक अनाथालय में सड़क पर के दीन हीन भिखारियों के साथ परलोकगामी हुआ; यह भीषण रोमांचकारी हृदय को दहलाने वाली घटना मानव-समाज को गुरुजनों का निरादर करने और समझ बूझ कर कार्य करने की शिक्षा दे गयी। इस प्रकार परलोकगामी होने पर भी मधुसूदन जिस कार्य को करने के लिये उत्पन्न हुए हुए थे उसे भली भाँति पूरा कर गये। वे बँगला साहित्य के लिये जो कर गये उसे बंगाल नहीं भूल सकता, बंगाल के लोग मधुसूदन के चिरकृतज्ञ और चिरऋणी रहेंगे। जब तक बँगला साहित्य का अस्तित्व रहेगा तब तक उनका नाम अमर रहेगा।

उपसंहार।

मधुसूदन के जीवन की दुखमय कहानी खतम हो गयी। अब हम उनके जीवन, साहित्य और कार्यों की संक्षिप्त-आलोचना करके पुस्तक समाप्त कर देंगे। मधुसूदन के जीवन में यह बात पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है कि जो मनुष्य जैसा होता है वह वैसा ही कार्य करता है, यहाँ तक कि अपनी लिखी हुई पुस्तकों को भी अपने ही रंग में रँग डालता है। लड़कपन से ही मधुसूदन की यह आदत थी कि सत्पथ हो या कुपथ, वे किसी विधि-निषेध की परवाह न करके कार्य करते थे, इस बुरी आदत को छुड़ानेवाला या उन्हें उपदेश देनेवाला कोई भी नहीं मिला, इसलिये मधुसूदन इसके आदी हो गये थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी इच्छा-पूर्ति और सुख-प्राप्ति की आशा से स्वधर्म छोड़कर विदेशी रमणी का पाणिग्रहण किया था और प्रत्येक सामाजिक कार्य आचार विचार आदि अपने इच्छानुसार करते थे। उनके इस स्वभाव का प्रभाव उनके ग्रन्थों पर

भी पड़ा है। संस्कृत पंडितों के आक्षेपों की जरा भी परवाह न करके उन्होंने अतुकान्त कविता रचकर साहित्य में नयी रीति चलायी अपने दुखमय जीवन की भाँति दुःखान्त नाटक रचकर संस्कृत-साहित्य के नियम का उल्लंघन किया। उन्होंने भिन्न भिन्न ग्रन्थों से सामिग्री इकट्ठी करके अपने ग्रन्थों की रचना की है। इसी तरह उनकी चित्तवृत्ति भी अनेक देश के लोगों की चित्तवृत्ति से गठित हुई थी। प्रेमशीलता और कोमलता में वे बंगाली, आचार-विचार में अँगरेज, विलासिता में फरासीसी और बहु भाषा-शिक्षा में जर्मनों के समान थे। मधुसूदन के जीवन की छाया मेघनादबंध में वर्णित रावण के ऊपर पूर्ण रूप से पड़ी है। जिस प्रकार रावण अतुल ऐश्वर्यशाली धन, रत्न, बल, पुत्र, पौत्रादि सभी चीजों से सम्पन्न था; लेकिन आत्मसंयम न होने के कारण अंत में सर्व खोकर ऐसी शोचनीय स्थिति में मया कि 'रहा न कुल कोउ रोवन हारा' की दशा हो गयी। उसी प्रकार यद्यपि मधुसूदन—स्त्री, पुत्र, स्वास्थ्य, विद्या-बुद्धि, प्रतिभा और धन से सम्पन्न थे; उनकी अपूर्व प्रतिभा के कारण उनसे सहानुभूति रखने वाले तथा सहायता करने वाले मनुष्य भी थोड़े नहीं थे, लेकिन आत्मसंयम न होने के कारण अंत में सब खोकर उन्हें दूसरे के दिये अन्न और वासस्थान पर निर्भर होना पड़ा, उनकी मृत्यु के समय अस्पताल के दो चार नौकरों के सिवाय उनके मुख में जल देनेवाला कोई भी मनुष्य नहीं था। दोनों के सर्वनाश का कारण एक ही था। जान पड़ता है कि अपने स्वभाव से सादृश्य होने के कारण ही माइकेल ने रावण और उसके परिवार मेघनाद, प्रमीला आदि के प्रति विशेष रूप से सहानुभूति दिखलायी है।

हम मधुसूदन के साहित्यिक जीवन की आलोचना भली

भाँति कर चुके हैं, उन्होंने बँगला-साहित्य में एक नवीन-युग उपस्थित कर दिया, बँगला भाषा की छिपी हुई शक्ति को सब के सामने उपस्थित कर दिया। उन्होंने अतुकान्त छंदों में कई ग्रन्थ लिखकर लोगों का यह भ्रम दूर कर दिया कि बँगला में उच्च श्रेणी की अतुकान्त कविता नहीं हो सकती। प्राच्य और पाश्चात्य भावों का सम्मिलन करके उन्होंने बँगला कविता का मार्ग प्रशस्त और समुज्वल कर दिया; भारतचन्द्र की कविता की कोमलता और पाश्चात्य कविता की ओजस्विता लेकर उन्होंने बँगला-कविता को नया रूप दिया। यद्यपि मधुसूदन की कविता में विजातीय भावों की अधिकता देखकर कष्ट होता है, लेकिन रास्ता दिखलाने वाला प्रायः पथच्युत हो ही जाता है। इसके सिवाय मधुसूदन ने प्राचीन ढंग की कविताओं की ओर से लोगों की रुचि हटा कर नवीन ढंग की ओर लगा दी। मधुसूदन की कविता की प्रधान विशेषता है पौरुषोचित वीर रस। यह कार्य पहले के किसी भी कवि ने नहीं किया था, मेघनाद की वीरता पढ़कर दुबले पतले बंगाली में भी वीररस का संचार हो जाता है।

मधुसूदन का जीवन किस प्रकार गठित हुआ था इसका वर्णन हम कर चुके हैं, यहाँ पर उनकी आकृति-प्रकृति और धर्म-विश्वास के बारे में दो चार बातें लिखी जाती है। मधुसूदन का कद औसत दर्जे का था, युवावस्था में उनका शरीर गठा हुआ और मजबूत था लेकिन प्रौढ़ावस्था में कुछ स्थूल हो गया था। साँवले होने पर भी वे देखने में सुन्दर मालूम होते थे, मुख पर ऐसी अद्भुत श्री थी कि देखते ही लोगों का चित्त उनकी तरफ खिच जाता था। उनका चौड़ा ललाट, बड़ी बड़ी तेजपूर्ण आँखें और सबल हृष्ट पुष्ट शरीर देखते ही वे प्रतिभावान पुरुष मालूम होते थे। उनकी बात चीत से भी सुकविजनोचित गंभीरता टपकती

थी। वे लड़कपन से युवावस्था तक खूब स्वस्थ थे लेकिन अमिताचार के कारण प्रौढ़ावस्था में स्थूलकाय हो गये थे। यदि वे असंयमी न होते तो अवश्य दीर्घजीवी होते। यद्यपि उनका भोजन और पहिनावा विदेशी था लेकिन उनका हृदय स्वदेश-प्रेम से भरा था जो कि हर जगह प्रतिलक्षित होता है। यदि उनसे कोई देशी पोशाक पहिनने के लिये कहता तो वे उससे कहते थे, "धोती चादर ही क्यों, कहीं लँगोटी जो कुछ कहो पहिनने को तैयार हूँ यदि साहेब लोगों को अर्धचन्द्राकार दिया जा सके।"

मधुसूदन के धर्म विश्वास के बारे में हम पहिले कुछ लिख चुके हैं। खीष्ट धर्म पर आपका कैसा विश्वास है यह पूछने पर वे कहते थे, "खीष्ट धर्म संसार में सभ्यता प्रचार करने का एक उपाय है यदि कोई इसके विरुद्ध कहे तो मैं उससे वादविवाद करने को तैयार हूँ, लेकिन वस्तुतः मेरा ध्यान हिन्दू धर्म की ओर है।" इसी के फल स्वरूप ऊपर से विदेशी आचार व्यवहार रखते हुए भी उनके हृदय में स्वधर्म पर पूरी श्रद्धा थी काली जी की पूजा के दिन प्रायः माता काली का दर्शन करते ही उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। एक बार उनके बाल बन्धु बाबू हरिमोहन बन्दोपाध्याय ने कालीपूजा के दिन उन्हें अपने घर पर निमन्त्रण दिया; मधुसूदन ने अपना पैत्रिक घर इन्हीं के हाथ बेच दिया था, उसी घर में उन्होंने काली जी की मूर्त्ति स्थापित की थी। उस दिन काली का दर्शन करते ही मधुसूदन की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली, लड़कपन की घटनाओं के साथ माता का स्मरण आते ही उन्होंने कहा, "माता तुम्हारे योग्य पुत्र ने तुम्हारा घर कैसा सजाया है; तुम्हारा अयोग्य संतान हूँ मुझसे तुम्हारी कोई भी इच्छा पूरी [illegible]।" मधुसूदन जब कभी अपने गाँव में जाते थे अपने गाँव

के लोगों का उचित सत्कार करते थे और यदि कलकत्ते में उनके गाँव का कोई आदमी उनसे मिलने आता था तो उसका भी यथोचित आदर करते थे। असंयमी और कुपथगामी होने के कारण यद्यपि उनमें अनेक दुर्गुण आ गये थे लेकिन स्वार्थपरता, क्रूरता, दूसरे का धन देख कर डाह करना, घमंड आदि दुर्गुण उनसे छू भी नहीं गये थे।

मधुसूदन की मृत्यु के सम्बन्ध में बङ्गाल-वासियों ने क्या किया, अब इस पर दो एक बातें कह कर मैं इस पुस्तक को समाप्त कर दूँगा। यह कहना व्यर्थ है कि मधुसूदन की मृत्यु पर बंगाल के सभी पत्रों ने उनके शोक पर अनेक कालम रँगे थे और सभाओं तथा रंगमंचों पर सर्वत्र बंगाल-वासियों ने शोक प्रगट किया था। श्रीबंकिमचन्द्र, श्रीहेमचन्द्र और श्रीनवीनचन्द्रादि बंगाल के सर्वश्रेष्ठ लेखकों और कवियों ने उनके शोक में कविताएँ रची थीं। मधुसूदन के असहाय पुत्रों और पुत्री शर्मिष्ठा के पठन-पाठन और निर्वाह के लिये मधुसूदन के मित्रों की चेष्टा से बंगाल के बहुत से उदार प्रतिष्ठित सज्जनों की एक कमेटी बन गयी थी; जिसने चन्दा करके उनके निर्वाह के लिये काफी धन एकत्रित कर दिया था। बामाबोधिनी पत्रिका के सम्पादक बाबू उमेशचन्द्रदत्त को और मध्य-बङ्गाल-सम्मेलन के उद्योग से १८ दिसम्बर १८८८ ई० को मधुसूदन की स्मृति के लिये एक समाधि-स्तम्भ भी खड़ा कर दिया गया, जिसके लिये सर गुरुदास बन्दोपाध्याय, बाबू सुरेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय, पंडित शिवनाथ शास्त्री, और बाबू नरेन्द्रनाथ सेन जैसे महोदयों ने भी जनता से चन्दा के लिये अपील की थी।